मासिक समाचारपत्र • पूर्णांक 76 • वर्ष 9, अंक 01 • मार्च 2019 • पाँच रुपये • 16 पृष्ठ

मज़दूर बिगुल

‘रोज़गार अधिकार रैली’ में हज़ारों की जुटान 3

नक़ली दवाओं का जानलेवा धन्धा 12

लड़ाई का कारोबार कविताएँ और कहानियाँ – बेर्टोल्ट ब्रेष्ट 15

अब विकल्प है!

मज़दूरों-मेहनतकशों ने बनायी अपनी क्रान्तिकारी पार्टी !

लोकसभा चुनावों में सात सीटों पर चुनाव लड़ेंगे ‘भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी (RWPI)’ के मज़दूरपक्षीय उम्मीदवार !

मज़दूर पार्टी को वोट दो ! पूँजीवाद को चोट दो ! मज़दूर पार्टी को वोट दो ! ठेका प्रथा को चोट दो !

सम्पादक मण्डल

नवम्बर 2018 में देश के विभिन्न हिस्सों के मज़दूरों, मेहनतकशों, ग़रीब किसानों और उनके बीच काम करने वाले राजनीतिक संगठनकर्ताओं ने ‘भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी’ यानी Revolutionary Workers Party of India (RWPI) का गठन किया है। इस पार्टी ने वैसे तो दिसम्बर 2018 में अहमदनगर, महाराष्ट्र में नगरपालिका चुनावों में शिरकत के साथ पूँजीवादी चुनावों में मज़दूर पक्ष के हस्तक्षेप की शुरुआत कर दी थी, लेकिन राष्ट्रीय स्तर पर पूँजीवादी संसद के चुनावों में देश के मज़दूरों-मेहनतकशों के वर्ग हितों की नुमाइन्दगी की शुरुआत इस लोकसभा चुनाव के साथ शुरू की जायेगी।

‘भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी’ का अन्तिम लक्ष्य है क्रान्तिकारी रास्ते से मज़दूर सत्ता की स्थापना और समाजवादी व्यवस्था का निर्माण। यानी एक ऐसी व्यवस्था का निर्माण जिसमें उत्पादन, राज-काज और समाज के पूरे ढाँचे पर उत्पादन करने वाले वर्गों का हक़ हो और फ़ैसला लेने की ताक़त **वास्तव में** उनके हाथों में हो। लेकिन इस लक्ष्य को पूरा करने के लिए यह ज़रूरी है कि आज ही से देश के मज़दूर वर्ग के स्वतन्त्र राजनीतिक पक्ष का निर्माण किया जाये और देश की हरेक महत्वपूर्ण राजनीतिक प्रक्रिया और राजनीतिक क्षेत्र में उसका क्रान्तिकारी हस्तक्षेप हो। पूँजीवादी चुनाव देश में एक बेहद महत्वपूर्ण राजनीतिक प्रक्रिया और राजनीतिक क्षेत्र है। इसमें क्रान्तिकारी और स्वतन्त्र मज़दूर पक्ष की दख़ल होना अनिवार्य है। यदि ऐसा नहीं होगा तो मज़दूर वर्ग की अपनी स्वतन्त्र आवाज़ और उसके अपने अलग वर्ग हित इस राजनीतिक प्रक्रिया से अनुपस्थित होंगे, जिसके नतीजे भयंकर होंगे। पहला नतीजा यह होगा कि मज़दूर और आम मेहनतकश आबादी इस या उस पूँजीवादी या टटपुँजिया पार्टी का पिछलग्गू बनेगी; दूसरा यह कि वह अपने आपको अलग और स्वतन्त्र तौर पर राजनीतिक रूप से संगठित और गोलबन्द नहीं कर पायेगी; तीसरा यह कि वह कभी अपनी शक्तियों का सही आकलन नहीं कर सकेगी और बिखराव का शिकार रहेगी; चौथा यह कि वह मौजूदा पूँजीवादी व्यवस्था के जनवाद को लेकर विभ्रमों का शिकार रहेगी और यह कभी नहीं समझ सकेगी कि एक ऐसी व्यवस्था में जिसमें उत्पादन के साधनों का एकाधिकार 10 फ़ीसदी पूँजीपति वर्ग और भूस्वामी वर्ग के हाथों में केन्द्रित है, वहाँ जनवाद भी मूलत: और मुख्यत: उन्हीं वर्गों के लिए होगा; और आखिरी नुक़सान, पूँजीवादी चुनाव प्रक्रिया और संसद में स्वतन्त्र क्रान्तिकारी मज़दूर वर्गीय हस्तक्षेप के बिना सभी पूँजीवादी चुनावबाज़ पार्टियों के छल-छद्म व्यापक मेहनतकश जनता के समक्ष उजागर नहीं किये जा सकते। **आज तक ऐसा ही होता आया है।** इसलिए यह एक बड़ी ज़रूरत थी कि पूँजीवादी चुनावों की पूरी प्रक्रिया में मज़दूर व आम मेहनतकश वर्गों के स्वतन्त्र राजनीतिक पक्ष की ओर से एक संगठित हस्तक्षेप

(पेज 7 पर जारी)

चौकीदार की नाक के नीचे

– राफ़ेल घोटाला

– 11,000 करोड़ की गैस अम्बानी ने चुराई

– माल्या, मेहुल, नीरव, ललित मोदी हज़ारों करोड़ का चूना लगाकर फ़रार

– विदेशी कर्ज़ 50% बढ़कर 82 लाख करोड़

– दलितों-मुसलमानों की हत्याएँ

– स्त्री अपराधों में देश पहले स्थान पर

– आतंकी हमलों में कई गुना बढ़ोत्तरी

गिनते जाइये, सूची बहुत लम्बी है...

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

आपस की बात

अपनी जिन्दगी बदलने के लिए खुद जागना होगा और दूसरों को जगाना होगा

मैं उत्तर प्रदेश प्रदेश के बस्ती जिले का रहने वाला हूं। दिल्ली में रहकर कई साल से मज़दूरी कर रहा हूं। मालिकों के शोषण और बुरे बरताव से तंग हूं। कहीं भाग जाने के बारे में सोचता रहता था। फिर एक दिन मुझे मज़दूर बिगुल अखबार मिला। इसने मुझे नया रास्ता दिखाया।

मज़दूर बिगुल पढ़ना मुझे अच्छा लगता है क्योंकि मज़दूर बिगुल से हमें बहुत कुछ सीखने-समझने को मिलता है जैसे देश की आर्थिक-राजनीतिक मसलों के बारे में सही निचोड़ मिलता है।

मज़दूर आन्दोलनों की प्राप्तियों-अप्राप्तियों, कमियों-कमज़ोरियों के बारे में सही जानकारी मिलती है।

दुनिया भर का जो मज़दूर वर्ग का इतिहास है उसकी रोशनी से आज भारत के मज़दूर वर्ग को रास्ता दिखाता है। दुनिया भर में पूँजीवाद-साम्राज्यवाद की जो मार मज़दूर वर्ग पर पड़ रही है उसका निचोड़ और मज़दूर वर्ग को आगे का रास्ता दिखाता है। मज़दूर वर्ग को किन-किन माँगों पर उन्हें संगठित किया जाये इसकी मज़दूर बिगुल पढ़ने वालों की समझ बनती है।

अब मैं समझ गया हूं कि भागना कोई रास्ता नहीं है। हमें एक होकर लड़ना होगा अपनी जिन्दगी बदलने के लिए खुद जागना होगा और दूसरों को जगाना होगा।

– आपका एक साथी
खजूरी खास, दिल्ली

गतिविधि रिपोर्ट

शिक्षा सहायता मण्डल, हरिद्वार

आपने 'एक अनार सौ बीमार' वाली कहावत तो सुनी होगी। यह कहावत हरिद्वार के रौशनाबाद से सटे तीन-चार गाँव के अर्द्धसरकारी स्कूल पर थोड़े नुक़्स के साथ सटीक बैठती है। नुक़्स यह है कि अर्द्धसरकारी स्कूल वाला 'अनार' ख़ुद भी बीमार है। रौशनाबाद, हेत्तमपुर, नवोदय नगर, आन्नेकी, औरंगाबाद जैसे गाँव में रहने वाले मेहनतकशों के ज़्यादातर बच्चे वहाँ स्थित एक अर्द्धसरकारी इण्टर कॉलेज में पढ़ने जाते हैं। इस स्कूल में बच्चे अधिक और सुविधाएँ कम होने के कारण यहाँ अशिक्षित साक्षरों की संख्या अधिक है। अधिकतर विषयों की पढ़ाई टेक्स्ट बुक से कम गाइड से अधिक होती है। यही कारण है कि बच्चों के लिए 'गणित' पैसों के जोड़-घटाव और सामानों के मापतोल से अधिक कुछ नहीं है, 'विज्ञान' का मतलब मोबाइल और तमाम इलैक्ट्रिक गैजेट हैं, 'इतिहास' का मतलब बीते ज़माने का कोई चीज़ है जिसका आज कोई मतलब नहीं है और 'अंग्रेज़ी' भाषा अंग्रेज़ों की छोड़ी हुई कोई शैतानी चाल है जो बच्चों को परेशान किये रहती है।

यहाँ फ़ैक्टरियों में न्यूनतम मज़दूरी बहुत कम है। परिवार का ख़र्च चलाना एक व्यक्ति के बस की बात नहीं है। जिन परिवारों में बच्चे हाई स्कूल में पहुँच जाते हैं, वे भी फ़ैक्टरियों में काम करने या किसी छोटे-मोटे काम-धन्धों में अपने परिवार की मदद करना शुरू कर देते हैं। पढ़ाई का बेहतर माहौल और सुविधाओं के न होने के बावजूद भी बच्चों में पढ़ने की चाहत बहुत है। ट्यूशन और कोचिंग संस्थानों की मँहगी फ़ीसों और ख़राब पढ़ाई की वजह से बहुत से छात्र पढ़ना चाहते हुए भी पढ़ नहीं पाते। बच्चों की इन्हीं दिलचस्पी की वजह से 'नौजवान भारत सभा' द्वारा हाई स्कूल और इण्टर की बोर्ड परीक्षाओं की तैयारी करवाने के लिए नवम्बर माह से 'शिक्षा सहायता मण्डल' की शुरुआत की गयी। इस शिक्षा सहायता मण्डल में अंग्रेज़ी, गणित, विज्ञान और सामाजिक विज्ञान जैसे विषयों की तैयारी करवायी गयी।

शिक्षा सहायता मण्डल की शुरुआत होते ही वो नौजवान मज़दूर लड़के-लड़कियाँ भी पढ़ने आने लगे जो औपचारिक शिक्षा नहीं ग्रहण कर पाये या किन्हीं कारणों से बचपन में ही उनकी पढ़ाई छूट गयी। ये नौजवान मज़दूर सुबह से शाम तक दस से बारह घण्टे काम करते हैं और शाम को हिन्दी भाषा पढ़ने और सीखने आते हैं। इन नौजवानों में पढ़ने की ललक इतनी ज़्यादा है कि कभी-कभी फ़ैक्टरी में ओवरटाइम लगने के कारण अगर किसी दिन इनकी पढ़ाई छूट जाती है तो अगले दिन सुबह-सुबह फ़ैक्टरी जाने से पहले पढ़ने के लिए आ जाते हैं।

मेहनतकशों के बच्चों में पढ़ने की दिलचस्पी होने के बावजूद भी मज़दूर बस्तियों में चलने वाले सरकारी-अर्द्धसरकारी स्कूलों की दुर्दशा की वजह से वे बेहतर शिक्षा से वंचित हो जाते हैं। इसको बदलने के लिए शिक्षा के क्षेत्र में 'सबको निःशुल्क और एकसमान शिक्षा' के नारे के साथ एक बड़े आन्दोलन की शुरुआत करनी होगी तभी मेहनतकशों के बच्चों को बेहतर शिक्षा हासिल हो सकती है।

उल्लेखनीय है कि ऐसे 'शिक्षा सहायता मण्डल' बिगुल मज़दूर दस्ता और नौजवान भारत सभा की ओर से उत्तर प्रदेश, बिहार, दिल्ली, हरियाणा, पंजाब, महाराष्ट्र आदि के अनेक ज़िलों में भी चलाये जा रहे हैं।

– अपूर्व

"बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार ख़ुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।" **– लेनिन**

'मज़दूर बिगुल' मज़दूरों का अपना अख़बार है।

यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता।
बिगुल के लिए सहयोग भेजिए/जुटाइए।
सहयोग कूपन मँगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिए।

**पूँजीपतियों के पास दर्जनों अख़बार और टीवी चैनल हैं।
मज़दूरों के पास है उनकी आवाज़ 'मज़दूर बिगुल'!
इसे हर मज़दूर के पास पहुँचाने में हमारा साथ दें।**

मज़दूर बिगुल के लिए अपने कारख़ाने, दफ़्तर या बस्ती की रिपोर्टें, लेख, पत्र या सुझाव आप इन तरीक़ों से भेज सकते हैं:
डाक से भेजने का पता: मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना, डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020
ईमेल से भेजने का पता: bigulakhbar@gmail.com

मज़दूर बिगुल की वेबसाइट
www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार, उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। बिगुल के प्रवेशांक से लेकर नवम्बर 2007 तक के सभी अंक भी वेबसाइट पर क्रमशः उपलब्ध कराये जा रहे हैं। मज़दूर बिगुल का हर नया अंक प्रकाशित होते ही वेबसाइट पर निःशुल्क पढ़ा जा सकता है।
आप इस फ़ेसबुक पेज के ज़रिये भी 'मज़दूर बिगुल' से जुड़ सकते हैं :
www.facebook.com/MazdoorBigul

'मज़दूर बिगुल' का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भर्ती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

प्रिय पाठको,

बहुत से सदस्यों को 'मज़दूर बिगुल' नियमित भेजा जा रहा है, लेकिन काफ़ी समय से हमें उनकी ओर से न कोई जवाब नहीं मिला और न ही बकाया राशि। आपको बताने की ज़रूरत नहीं कि मज़दूरों का यह अख़बार लगातार आर्थिक समस्या के बीच ही निकालना होता है और इसे जारी रखने के लिए हमें आपके सहयोग की ज़रूरत है। अगर आपको 'मज़दूर बिगुल' का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया जल्द से जल्द अपनी सदस्यता राशि भेज दें। आप हमें मनीऑर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं।

मनीऑर्डर के लिए पता :
मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना
डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020
बैंक खाते का विवरण : Mazdoor Bigul
खाता संख्या : 0762002109003787, IFSC: PUNB0076200
पंजाब नेशनल बैंक, निशातगंज शाखा, लखनऊ
सदस्यता : वार्षिक : 70 रुपये (डाकख़र्च सहित); आजीवन : 2000 रुपये

मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं :
फ़ोन : 0522-4108495, 8853093555, 9936650658
ईमेल : bigulakhbar@gmail.com
फ़ेसबुक : www.facebook.com/MazdoorBigul

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय : 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006
फ़ोन: 8853093555
दिल्ली सम्पर्क : बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-94, फ़ोन: 011-64623928
ईमेल : bigulakhbar@gmail.com
मूल्य : एक प्रति – 5/- रुपये
वार्षिक – 70/- रुपये (डाक ख़र्च सहित)
आजीवन सदस्यता – 2000/- रुपये

राजधानी दिल्ली में 3 मार्च को बसनेगा अभियान का दूसरा पड़ाव 'रोज़गार अधिकार रैली' में कई राज्यों से हज़ारों की जुटान

पिछली 3 मार्च 2019 के दिन देश की राजधानी दिल्ली में हज़ारों आँगनवाड़ी कर्मियों, औद्योगिक मज़दूरों, छात्रों, युवाओं, घरेलू कामगारों और न्यायपसन्द नागरिकों ने रोज़गार अधिकार रैली निकाली। रोज़गार के मुद्दे पर आयोजित रोज़गार अधिकार रैली का यह दूसरा पड़ाव था। पहला पड़ाव था 25 मार्च 2018 का। 'भगतसिंह राष्ट्रीय रोज़गार गारण्टी क़ानून' (बसनेगा) अभियान के मीडिया प्रभारी योगेश स्वामी ने बताया कि देश के अलग-अलग हिस्सों में बसनेगा पारित कराने के लिए विभिन्न संगठनों और यूनियनों के कार्यकर्त्ताओं की टोलियाँ पिछले काफ़ी समय से प्रचार कार्य में जुटी हुई थी। 3 मार्च की विशाल रैली इसी का परिणाम थी। रोज़गार अधिकार रैली के माध्यम से सत्ता के सामने अपने हक़ का मुक्का तो ठोंका ही गया, इसके साथ ही यह सन्देश भी गया कि देश की जनता नक़ली मुद्दों पर लड़ने की बजाय असली मुद्दों को उठाकर उन पर एकजुट संघर्ष खड़े करना भी जानती है। दिल्ली, हरियाणा, महाराष्ट्र, बिहार में कार्यरत विभिन्न यूनियनों और जन-संगठनों ने दिलोजान से रोज़गार अधिकार रैली के आयोजन में ताक़त झोंकी।

नौजवान भारत सभा, दिशा छात्र संगठन, दिल्ली एनसीआर की विभिन्न यूनियनों जैसे दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन, दिल्ली इस्पात उद्योग मज़दूर यूनियन (रजि. संख्या : एफ़/10/डीटीआरयू/एनडब्ल्यूडी/37/14), दिल्ली मेट्रो रेल कॉन्ट्रैक्ट वर्कर्स यूनियन (रजि. संख्या : एफ़/10/डीआरटीयू/नार्थ ईस्ट/2016/1), दिल्ली घरेलू कामगार यूनियन, बवाना औद्योगिक क्षेत्र मज़दूर यूनियन, ऑटोमोबाइल इण्डस्ट्री काण्ट्रैक्ट वर्कर्स यूनियन आदि के साथ-साथ बिगुल मज़दूर दस्ता ने भी 'भगतसिंह राष्ट्रीय रोज़गार गारण्टी क़ानून पारित करो अभियान' के तहत आयोजित उक्त रैली में शिरकत की। ज्ञात हो पिछले साल 25 मार्च 2018 के दिन राजधानी दिल्ली में बसनेगा अभियान के तहत विशाल रोज़गार अधिकार रैली का आयोजन किया जा चुका है।

रोज़गार अधिकार रैली का आयोजन रामलीला मैदान से संसद मार्ग तक किया गया था उसके बाद संसद मार्ग पर ही कई घण्टे तक जनसभा का आयोजन किया गया। मंच संचालन नौभास के सदस्य विशाल ने किया। विभिन्न संगठनों के प्रतिनिधियों ने जनसभा को सम्बोधित किया तथा बसनेगा क़ानून की ज़रूरत पर अपने विचार रखे। सबसे पहले 'भगतसिंह राष्ट्रीय रोज़गार गारण्टी क़ानून पारित करो अभियान' की ओर से शिवानी ने विस्तार से बसनेगा क़ानून की विभिन्न प्रमुख माँगों पर प्रकाश डाला। दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन की ओर से अंजू, बवाना औद्योगिक क्षेत्र यूनियन की ओर से भारत, दिल्ली घरेलू कामगार यूनियन की ओर से बेबी, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के मेस यूनियन की ओर से रामप्रकाश, होण्डा टपूकड़ा के संघर्ष में शामिल रहे साथी राजपाल, नौजवान भारत सभा की ओर से अभिजीत और इन्द्रजीत समेत कई साथियों ने सभा को सम्बोधित किया। बिगुल मज़दूर दस्ता की ओर से मज़दूर बिगुल के सम्पादक अभिनव ने विस्तार से बसनेगा के समर्थन में विस्तार से बात रखी। उन्होंने अपनी बात की शुरुआत हम मेहनतकश जग वालों से जब अपना हिस्सा माँगेंगे गीत से की। अभिनव ने बसनेगा क़ानून को बेहद ज़रूरी बताते हुए रोज़गार के मसले पर सरकारों की जनविरोधी नीतियों पर रोशनी डाली। भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी की ओर से सनी सिंह ने सभा को सम्बोधित किया। उन्होंने बसनेगा अभियान के तहत उठायी जा रही माँगों को पूर्ण समर्थन दिया। सनी ने कहा कि मज़दूरों-मेहनतकशों के क्रान्तिकारी विकल्प के तौर पर भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी का गठन किया गया है। पार्टी न केवल सड़क पर मेहनतकशों की लड़ाई लड़ेगी बल्कि संसद में मेहनतकश जनता की आवाज़ बुलन्द करने हेतु प्रतिबद्ध रहेगी। कई घण्टे तक चली सभा के दौरान सभा बख़ूबी जमी रही। बसनेगा की संयोजक शिवानी ने 3 बेहद ज़रूरी मसलों पर सामूहिक शपथ दिलवायी। पहली शपथ थी कि जो भी चुनावी पार्टी 2019 के लोकसभा चुनाव से पहले लिखित में 'भगतसिंह राष्ट्रीय रोज़गार गारण्टी क़ानून' पारित करने का वायदा नहीं करेगी, उसका पूर्ण बहिष्कार किया जायेगा। दूसरी शपथ फासीवादी भारतीय जनता पार्टी के पूर्ण बहिष्कार की थी। क्योंकि मोदी सरकार अपने वायदों को पूरा कर पाने में बुरी तरह से असफल हुई है तथा अब अन्तिम समय में देश भर में जाति-धर्म-आरक्षण-क्षेत्र के नाम बँटवारे की राजनीति फैलायी जा रही है। भाजपा कभी राम मन्दिर के मुद्दे की शरण में जा रही है तो कभी युद्धोन्माद भड़काकर सेना के नाम पर अपनी चुनावी गोटियाँ लाल करने के प्रयास कर रही है। ऐसे में जनता को चाहिए कि वह भाजपा जैसी जनविरोधी पार्टी का पूर्ण बहिष्कार करे। तीसरी शपथ गोदी मीडिया के पूर्ण बहिष्कार की ली गयी। अपवादों को छोड़कर आज के अधिकतर मीडिया घराने पूरी तरह से सरकार के सामने पूँछ हिला रहे हैं। जनता को असली मुद्दों से भटकाने का काम बिकाऊ मीडिया पूरी शिद्दत के साथ कर रहा है। ऐसे में जनता को ऐसे बिकाऊ मीडिया का पूर्ण बहिष्कार करना बिल्कुल उचित क़दम है।

योगेश स्वामी ने आगे 'भगतसिंह राष्ट्रीय रोज़गार गारण्टी क़ानून' (बसनेगा) पारित करो अभियान प्रमुख माँगों को रेखांकित करते हुए बात रखी। बसनेगा अभियान की पहली माँग है, हरेक काम करने योग्य नागरिक को स्थायी रोज़गार के अधिकार और सभी को समान और निःशुल्क शिक्षा के अधिकार को संवैधानिक संशोधन करके मूलभूत अधिकारों में शामिल किया जाये। देश के संविधान का अनुच्छेद 14 कहता है कि सभी को 'समान नागरिक अधिकार' हैं और अनुच्छेद 21 के अनुसार सभी को 'मानवीय गरिमा के साथ जीने का अधिकार' है। किन्तु सच्चाई यह है कि ये अधिकार देश की बहुत बड़ी आबादी के असल जीवन से कोसों दूर हैं। क्योंकि न तो देश स्तर पर एक समान शिक्षा-व्यवस्था लागू है तथा न ही सभी को स्थाई रोज़गार की कोई गारण्टी प्राप्त है! राज्य की तरफ़ से देश के प्रत्येक नागरिक को बिना किसी भेदभाव के जीवन की मूलभूत सुविधाएँ प्राप्त होनी चाहिए, किन्तु शिक्षा के क्षेत्र में ही फैली ग़ैर-बराबरी समान नागरिक अधिकार की कलई खोल देती है। जीने के अधिकार की यदि बात करें तो जीने के लिए सबसे पहले तो रोज़गार की आवश्यकता होती है। बिना स्थाई रोज़गार के दर-दर भटकने में गरिमा के साथ जीना तो दूर की बात है व्यक्ति का जीवन ही नरक हो जाता है। हर काम करने योग्य स्त्री-पुरुष को रोज़गार मिलने पर ही उसका 'मानवीय गरिमा के साथ जीने का अधिकार' सुनिश्चित हो सकता है। इसलिए संविधान में संशोधन करके शिक्षा और रोज़गार के अधिकारों को मौलिक अधिकारों में शामिल किया जाना चाहिए और राज्य की यह ज़िम्मेदारी होनी चाहिए कि वह शिक्षा और रोज़गार की ज़िम्मेदारी ठोस तौर पर उठाये।

बसनेगा अभियान की अगली माँग है 'भगतसिंह राष्ट्रीय रोज़गार गारण्टी क़ानून' पारित करके गाँव-शहर दोनों के स्तर पर पूरा साल पक्के रोज़गार की गारण्टी दी जाये तथा रोज़गार नहीं दे पाने की सूरत में सभी को न्यूनतम 10,000 रुपये प्रतिमाह गुज़ारे योग्य बेरोज़गारी भत्ता प्रदान किया जाये। 'मनरेगा' क़ानून के तहत सरकार ने पहली बार माना था कि रोज़गार की गारण्टी देना उसकी ज़िम्मेदारी है, किन्तु यह योजना भी भ्रष्टाचार की भेंट चढ़ गयी। न केवल ग्रामीण और न केवल 100 दिन बल्कि हरेक के लिए उचित जीवनयापन योग्य पक्के रोज़गार के प्रबन्ध की ज़िम्मेदारी भारतीय राज्य व सरकारों की बनती है तथा रोज़गार नहीं दे पाने की सूरत में नागरिकों को गुज़ारे योग्य कम से कम 10,000 रुपये बेरोज़गारी भत्ता मिलना चाहिए। सभी को रोज़गार देने के लिए तीन चीज़ें चाहिए : (1) काम करने योग्य हाथ (2) विकास की सम्भावनाएँ (3) प्राकृतिक संसाधन। हमारे देश में इनमें से किसी भी चीज़ की कमी नहीं है। अप्रत्यक्ष करों के रूप में सरकारों के पास गया आम जनता का पैसा नेताशाही-नौकरशाही और पूँजीपतियों की जमात निगल जाती है और डकार तक नहीं लेती! जनता का पैसा जनता पर ही ख़र्च होना चाहिए। यदि जनता का पैसा जनता पर ही ख़र्च हो तो प्रचुर मात्रा में रोज़गार सृजित किये जा सकते हैं। यदि सरकार रोज़गार सृजित करने में नाकामयाब रहती है तो बेरोज़गारी भत्ता देश की जनता का जायज़ हक़ बनता है।

बसनेगा अभियान की अगली माँग है केन्द्र और राज्यों के स्तर पर जिन भी पदों की परीक्षाएँ हो चुकी हैं, उन पर उत्तीर्ण उम्मीदवारों को तत्काल नियुक्तियाँ दी जायें। आवश्यक परीक्षाएँ और साक्षात्कार की कार्यवाही पूरी होने के बावजूद भी नौकरी न देकर सरकारों ने देश के लाखों युवाओं के भविष्य को अधर में लटका रखा है। अनिश्चय की स्थिति में फँसे युवा सरकारों की इसी सुस्ती और काहिली की वजह से आये दिन न केवल नये-नये फ़ॉर्म भरने में पैसे बरबाद करते हैं, बल्कि परीक्षाओं में दूर-दूर तक के धक्के खाकर अपने क़ीमती समय और सेहत का भी नुक़सान करते हैं। इसलिए परीक्षाओं में उत्तीर्ण उम्मीदवारों को तुरन्त प्रभाव से नियुक्ति मिलनी चाहिए।

बसनेगा अभियान की अगली माँग है कि केन्द्र और राज्यों के स्तर पर तुरन्त प्रभाव से ज़रूरी परीक्षाएँ आयोजित कराके सभी ख़ाली पदों को जल्द से जल्द भरा जाये। आज के समय देश भर में लाखों पद ख़ाली पड़े हैं। बहुत से विभागों में तो सालों से नयी भर्तियाँ तक आयोजित नहीं की गयी हैं। शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवहन, बिजली, खाद्य इत्यादि जैसे जीवन के बुनियादी आधार से जुड़े विभागों में भी लाखों-लाख पद ख़ाली पड़े हैं। सरकार यदि जनता की ज़रूरतों का ख़याल नहीं रख सकती तो वह जनता से करों की उगाई पर भी रोक लगा दे।

बसनेगा अभियान की अगली माँग है कि नियमित प्रकृति के कार्य में ठेका प्रथा और फ़िक्स टर्म एम्पलॉयमेण्ट पर तत्काल रोक लगायी जानी चाहिए। और सभी श्रम क़ानूनों को सख़्ती से लागू करवाया जाये। ख़ुद देश के संविधान का 1970 का श्रम सम्बन्धित एक्ट कहता है कि नियमित प्रकृति के काम में लगे कर्मचारियों को पक्का होना चाहिए। किन्तु यहाँ ख़ुद सरकारी महक़मों में ही काम ठेके पर लिया जा रहा है। देश के करोड़ों लोगों को ठेकेदारी प्रथा में फँसा रखा है। स्थाई प्रकृति के काम पर रोज़गार भी स्थाई ही होना चाहिए। सभी श्रम क़ानूनों को भी सख़्ती के साथ लागू किया जाना चाहिए।

बसनेगा की अगली माँग है कि काम के घण्टे 6 होने चाहिए। श्रमिक आन्दोलनों की ज़रा भी जानकारी रखने वाला व्यक्ति इस बात को अच्छी तरह से जानता है कि 8 घण्टे कार्यदिवस की माँग आज से क़रीब 132 साल पहले उठायी गयी थी। तब से श्रम की उत्पादकता में बेशुमार बढ़ोत्तरी हुई है। उस समय जो काम हज़ारों लोग कई दिनों में पूरा करते थे, आज वही काम कुछ ही लोग चन्द घण्टों में पूरा कर सकते हैं। बढ़ी हुई उत्पादकता का सारा फ़ायदा देश की लुटेरी जमात ने उठाया

(पेज 4 पर जारी)

कारख़ाना मज़दूर यूनियन के दूसरे सदस्य सम्मेलन का आयोजन

24 फ़रवरी 2019 को लुधियाना के जोगियाना स्थित थापर पार्क में कारख़ाना मज़दूर यूनियन का दूसरा सदस्य सम्मेलन आयोजित किया गया। इसमें यूनियन के सदस्य बड़ी संख्या में शामिल हुए। सम्मेलन में यूनियन नेताओं ने देश-दुनिया के हालातों के बारे में बातचीत रखी। संगठन की पिछले समय की गतिविधि रिपोर्ट पेश की गयी। हाज़िर सदस्यों ने नयी नेतृत्वकारी कमेटी का चुनाव किया। कमेटी में लखविन्दर (अध्यक्ष), कृष्ण (सचिव), सुशील कुमार (खजांची), दीपक (प्रचार सचिव), समर (क़ानूनी मामलों के सचिव), रमेश सिंह, तेजू प्रसाद, बबन कुमार, पिण्टू कुमार व अमित कुमार का चुनाव किया गया।

सम्मेलन में विभिन्न वक्ताओं ने कहा कि आज पूरी दुनिया में पूँजीवादी व्यवस्था मज़दूरों का भयानक लूट-शोषण कर रही है। इस लूट-शोषण के खिलाफ़ मज़दूर विभिन्न स्तर के संघर्ष भी कर रहे हैं। पूँजीवादी आर्थिक संकट पूरे संसार व भारत में दिन-ब-दिन गहराता जा रहा है। भारत के मज़दूरों की हालत बहुत बुरी हो चुकी है। लुधियाना सहित पूरे देश के मज़दूरों को क़ानून श्रम अधिकार तक नहीं दिये जा रहे। वेतन, नौकरी की सुरक्षा, हादसों से सुरक्षा, ईएसआई, ईपीएफ़ जैसे अधिकार भी लागू नहीं हैं। सरकारी व्यवस्था सरेआम पूँजीपतियों की दलाली कर रही है। सभी पार्टियों की केन्द्र व राज्य सरकारें श्रम क़ानूनों में मज़दूर विरोधी संशोधन कर रही हैं। दलाल यूनियनों ने मज़दूरों की हालत और बुरी बना रखी है। इस हालत में मज़दूरों के पास जुझारू एकजुट संघर्ष के बिना और कोई राह नहीं बची। आज ज़रूरत है कि मज़दूरों को विशाल जनवादी यूनियनों में संगठित किया जाये और जुझारू संघर्षों में उतरा जाये। मज़दूरों को अन्य तबक़ों के अधिकारपूर्ण संघर्षों की भी हिमायत करनी चाहिए। हाकिमों द्वारा जनता को धर्म, जाति, इलाक़े के नाम पर बाँटने-लड़ाने की साजिशें तेज़ हो गयी है। अन्धराष्ट्रवाद ज़ोर-शोर से फैलाया जा रहा है। इस सबका मक़सद मज़दूरों-मेहनतकशों के वास्तविक मुद्दों से ध्यान भटकाना है, आपस में लड़ाना है।

वक्ताओं ने कहा कि यूनियन के सभी सदस्यों को लुधियाना के मज़दूरों को अपने अधिकारों के लिए जागरूक करने के लिए ज़ोरदार कोशिशें करनी चाहिए। कारख़ाना मज़दूर यूनियन ने सन् 2008 में अपनी स्थापना से लेकर अब तक मज़दूरों को जागरूक, संगठित करने में लगी हुई है। अनेकों छोटे-बड़े संघर्ष हुए हैं। अन्य मेहनतकश लोगों के जायज़ माँग-मसलों, जनता के जनवादी मुद्दों पर डटकर खड़ी होती रही है। टेक्सटाइल हौज़री कामगार यूनियन के नेता गुरदीप ने कारख़ाना मज़दूर यूनियन के सम्मेलन के लिए बधाई दी और उम्मीद व्यक्त की कि यूनियन जन-हित में संघर्षरत रहेगी। सम्मेलन का मंच संचालन समर ने किया।

- बिगुल संवाददाता, लुधियाना

हौज़री के मज़दूरों की ज़िन्दगी की एक झलक

ज़िन्दा-दिल और ख़ुशमिजाज़ बशीर एक हौज़री मज़दूर है। वह बतौर दर्ज़ी शिवपुरी स्थित आर.के. दर्शन हौज़री लुधियाना में काम करता है। बशीर बिहार के सीवान ज़िले का रहने वाला है। उसके तीन बच्चे हैं जो अपनी माँ के साथ गाँव में रहते हैं। बशीर ने बताया कि उपरोक्त कारख़ाने में लगभग तीन सौ मज़दूर काम करते हैं। इस कारख़ाने में ठेका/पीस रेट पर काम कराया जाता है और श्रम क़ानूनों के अनुसार कोई भी सुविधा नहीं दी जाती। यहाँ तक कि किसी भी मज़दूर के पास कारख़ाने का पहचान पत्र भी नहीं है। जब कि श्रम क़ानूनों के अनुसार दस मज़दूरों तक बिजली के साथ काम करवाने वाले कारख़ाने का, फ़ैक्टरी एक्ट के तहत, पंजीकरण करवाना ज़रूरी है, पर यह कारख़ाना सरेआम ग़ैर-क़ानूनी तरीक़े से चल रहा है।

यही नहीं बल्कि हर साल कम माँग/मन्दी का सारा बोझ मज़दूरों पर डालते हुए पीस रेट कम किये जा रहे हैं। इस साल ट्रेक सूट की सिलाई 28 रुपये कर दी गयी जो कि पिछले साल 35 रुपये थी। शुरू में कोई दर्ज़ी इतने कम रेट पर काम करने को तैयार नहीं था, पर कुछ दिन दौड़-धूप करने पर पता चला कि हर हौज़री में पीस रेट कम किये जा रहे हैं। इसलिए वापिस उसी जगह पर काम करना पड़ा। अगर कोई मज़दूर मेहनताने की माँग करता है तो मालिक कह देता है "जहाँ ज़्यादा मिलता है वहीं काम कर लो!" लुधियाना में यह अक्सर ही देखने-सुनने में आ जाता है। हर कारख़ाने की यही हालत है।

बशीर ने बताया कि फ़िलहाल एक कमरे में वे दो आदमी रहते हैं और सीज़न के वक़्त चार आदमी रहते हैं। इस वक़्त कुल ख़र्च (कमरे का किराया, बिजली का बिल, खाना, चाय-पानी, फ़ोन आदि) 3500-4000 तक आ जाता है। ज़्यादा लोगों के रहने पर परेशानी तो होती है मगर ख़र्चा कम हो जाता है। उसने बताया कि हर साल महँगाई बढ़ने के कारण ख़र्चे में 300-400 की बढ़ोत्तरी हो जाती है पर आमदन बढ़ने की बजाय कम हो रही है। पहले 12 घण्टे काम करके 5-6 सौ तक की दिहाड़ी बन जाती थी पर अब सिर्फ़ 4 सौ तक ही रह गयी है।

पिछले हफ़्ते बुखार होने के कारण वह बीमार रहा पर फिर भी वेतन घटने के कारण छुट्टी नहीं कर सका। इस स्थिति का मुक़ाबला करने के लिए सबसे पहला असर खाने पर पड़ा है, पहले हफ़्ते में दो-तीन बार अण्डा-मीट बना लिया जाता था पर अब सिर्फ़ एक दिन इतवार को ही बनता है। कपड़े वग़ैरा भी मज़दूरी के वक़्त ही सिलवाये जाते हैं। ज़रूरतें कम करने की कोशिशें की जा रही हैं, पर फिर भी परिवार का गुज़ारा मुश्किल से हो रहा है।

एक साल पहले ज़्यादा कमाई की उम्मीद में बशीर काम करने के लिए दुबई चला गया था पर काम के बुरे हालात और कपनियों द्वारा मज़दूरों के साथ की जाती बेईमानी देखकर वह 3-4 महीनों के अन्दर ही लुधियाना वापिस आ गया। वहाँ घुली-मिली मज़दूर आबादी की बदतर हालत के भी उसने अनेक क़िस्से सुने, उनके बारे में फिर कभी। बातों-बातों में बशीर की चिन्ता साफ़ दिखायी दे रही थी कि अगर महँगाई का बढ़ना और मालिकों का रवैया ऐसा ही रहा तो गुज़ारा कैसे होगा!!

– राजविन्दर

एक पंजाबी मज़दूर के शब्द 'प्रवासी मज़दूरों ने पंजाब को गन्दा कर दिया है' – क्या वाक़ई ऐसा है?

मज़दूरों के साथ बातचीत के दौरान कई बार पंजाबी मज़दूरों की तरफ़ से यह एतराज़ ज़ाहिर किया जाता है कि "यूपी, बिहार के मज़दूरों के आने से वेतन/पीस रेट कम हो गये हैं, पंजाबी मज़दूरों की क़द्र भी कम हो गयी है।" कई पंजाबी मज़दूर तो नफ़रत भरे शब्दों के ज़रिये अपने दिल का गुस्सा निकालते हैं। वे अपनी समस्याओं का ज़िम्मेदार प्रवासी मज़दूरों को ठहराते हैं और ऐसा सोचते हुए वे सरकार और पूँजीपतियों को निर्दोष मान लेते हैं। लुधियाना के छोटे-बड़े कारख़ानों में भी प्रवासी, पंजाबी मज़दूर अलग-अलग गुटों में बँटे हुए हैं। इस इलाक़ाई फूट का पूँजीपति बाख़ूबी लाभ उठाते हैं और ऐसी फूट को खाद-पानी देने का काम भी करते हैं। कारख़ानों में आम तौर पर चौकीदारी, दफ़्तरी कामों, आदि में पंजाबी मज़दूरों की संख्या ज़्यादा रखी जाती है। जिस कारण ज़्यादा सख़्ती से काम करवाना मालिकों के लिए आसान हो जाता है। ऐसा श्रम-विभाजन प्रवासी मज़दूरों के अन्दर भी पंजाबी मज़दूरों के प्रति नफ़रत का कारण बनता है। मज़दूरों की हड़तालों के वक़्त भी इलाक़ाई गुटों में बँटे मज़दूरों को संगठित करने में मुश्किलें पेश आती हैं। जागरूक मज़दूरों को यह बात चुभती भी है। संगठन बनाने के मामले में तो कई प्रवासी मज़दूर कहते भी हैं कि जब तक स्थानीय मज़दूर साथ नहीं देंगे तब तक प्रवासी मज़दूरों का संघर्ष के मैदान में टिके रहना मुश्किल है। क्यूँकि हड़तालों के वक़्त स्थानीय मज़दूर ज़्यादा समय तक डटे रह सकते हैं। जब कि प्रवासी मज़दूरों के पास स्थानीय सम्पर्क नहीं होते उनके लिए कमरे का किराया, राशन जैसी समस्याएँ खड़ी हो जाती हैं। पंजाबी मज़दूरों का भी एतराज़ है कि अगर मालिक वेतन/पीस रेट कम करते हैं तो प्रवासी मज़दूर काम बन्द (हड़ताल) करने के लिए तैयार नहीं होते, श्रम क़ानूनों को लागू कराने या वेतन बढ़ाने की लड़ाई में भी सहयोग नहीं देंगे। कई बार खाने-पीने, रहन-सहन, रीति-रिवाजों, आदि जैसी सांस्कृतिक विभिन्नता भी गुटबन्दी का काम करती है।

राष्ट्रीय और सांस्कृतिक विभिन्नता सारे विश्व में ही स्थानीय और प्रवासी मज़दूरों में आपसी टकराव का कारण भी बनती है। पर प्रवासी मज़दूरों की तरफ़ से मुख्य एतराज़ कम वेतन पर काम करना ही होता है। ये सारा कुछ विदेश गये पंजाबी मज़दूरों को भी भुगतना पड़ता है। ऐसे हालात में रहते हुए मज़दूर सरकार और पूँजीपतियों की भूमिका को नज़र-अन्दाज़ कर देते हैं।

मुख्य बात यह है कि प्रवास करना मज़दूरों का शौक़ नहीं मजबूरी है। दूसरे मज़दूरों का पंजाब आना और पंजाबी मज़दूरों का विदेशों में जाना पूँजीवादी ढाँचे की नीतियों के कारण ही है। अगर आदमी को उसकी पारिवारिक रिहाइश के पास काम मिलेगा तो वह प्रवास नहीं करेगा, वो उसी जगह काम करने को तरजीह देगा और ऐसे विवाद भी खड़े नहीं होंगे। पर पूँजीवादी ढाँचे के अन्तर्गत विकास असमान होता है। पूँजीपति सस्ती श्रम शक्ति के साथ-साथ कारख़ाने के लिए सस्ते कच्चे माल की उपलब्धता, आवागमन के साधन, तैयार माल के लिए मण्डी, स्थानीय सरकार का कारख़ाने के प्रति नरम रुख़ आदि को ध्यान में रखकर ही कारख़ाना लगाता है ना कि लोगों के रोज़गार की ज़रूरतों को ध्यान में रख कर। यह असमान विकास कुछ क्षेत्रों में ज़्यादा तरक़्क़ी और कुछ को पीछे ले जाता है। यह पिछड़े हुए क्षेत्र उन्नत क्षेत्रों की तरफ़ सस्ती श्रम शक्ति के लगातार प्रवाह को यक़ीनी बनाते हैं। पक्के रोज़गार का न मिलना और पूँजीवादी विकास के फलस्वरूप छोटे-मोटे धन्धों का चौपट होना है इस प्रवाह को और तेज़ कर देता है। आज हमारे देश के ऐसे ही हालात हैं।

सारे नागरिकों को पक्का रोज़गार, मुफ़्त शिक्षा और स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधाएँ देना सरकार की ज़िम्मेदारी और लोगों का संवैधानिक अधिकार है। पर हमारे देश में केन्द्रीय और राज्य सरकारें इन ज़िम्मेदारियों से भाग रही हैं। देश के ख़ज़ाने पूँजीपतियों के लिए तो खुले हैं पर आम लोगों के लिए ख़ाली हैं। लोगों के एकजुट संघर्ष के डर से ख़तरनाक काले क़ानून बनाने के साथ-साथ धार्मिक, क्षेत्रीय और जात-पात को उभार कर फूट डाली जा रही है। जात-धर्म-क्षेत्र आधारित पूँजीपतियों की राजनीतिक पार्टियाँ और संगठन ऐसी फूटों को और मज़बूत कर रहे हैं। इसलिए मज़दूरों को पूँजीपतियों की ऐसी शातिराना चालों से सावधान रहना चाहिए। जात-धर्म-क्षेत्र से ऊपर उठकर संगठित संघर्ष के ज़रिये ही मज़दूर अपने हालात बदल सकते हैं, ना कि एक-दूसरे को दोषी ठहरा कर।

– राजविन्दर

बसनेगा रैली : दूसरा पड़ाव

(पेज 3 से आगे)

है। विज्ञान और तकनीक के इस युग में काम के 6 घण्टों की माँग बेहद जायज़ माँग है। यदि काम के घण्टे 6 का क़ानून सख़्ती से लागू कर दिया जाये तो करोड़ों नये रोज़गार ख़ुद-ब-ख़ुद ही सृजित हो जायेंगे।

बसनेगा अभियान ने सैनिकों और अर्धसैनिक बलों की जायज़ माँगों को भी अपने माँगपत्रक में रखा है। सेना के जितने जवान मलेरिया, डेंगू और आत्महत्याओं की भेंट चढ़ जाते हैं, उतने तो सीमा पर और आतंकवादी गतिविधियों के कारण भी अपनी जान नहीं गँवाते। युद्ध, जोकि जनता के लिए केवल तबाही और मुनाफ़ाखोरों और दलालों के लिए एशोआराम का इन्तज़ाम होता है, के लिए भावनाएँ भड़काने से सरकारों को बाज आना चाहिए और सेना के जवानों की वन रेंक वन पेंशन और अर्धसैनिक बलों की पुरानी पेंशन स्कीम को बहाल करने की माँगों को तत्काल प्रभाव से पूरा किया जाना चाहिए।

अपने माँगपत्रक के समर्थन में देश भर से आये हज़ारों हस्ताक्षर भी सम्बन्धित केन्द्र और राज्य सरकारों और ज़िम्मेदार विभागों को सौंपे गये। रोज़गार अधिकार रैली में जुटी यूनियनों और जनसंगठनों ने अपने-अपने विशिष्ट माँगपत्रक भी सरकार को सौंपे।

(अर्द्ध)कुम्भ : भ्रष्टाचार की गटरगंगा और हिन्दुत्ववादी फ़ासीवाद के संगम में डुबकी मारकर जनता के सभी बुनियादी मुद्दों का तर्पण करने की कोशिश

इलाहाबाद में सरकार द्वारा लगातार तारीख़ बढ़ाते रहने के बाद कुम्भ आख़िरकार अब ख़त्म हो गया। चीज़ों के नाम बदलने में माहिर उत्तर प्रदेश के मुख्यमन्त्री योगी आदित्यनाथ ने हर 6 साल में एक बार लगने वाले 'अर्द्धकुम्भ' को 'कुम्भ' और हर 12 साल में एक बार लगने वाले 'कुम्भ' को 'महाकुम्भ' का नाम देकर आने वाले चुनावों के मद्देनज़र भीड़ जुटाकर अपना चेहरा चमकाने की कोशिश की थी। इस बार का कुम्भ एक धार्मिक आयोजन से ज़्यादा सरकारी आयोजन था। वैसे किसी बुर्जुआ लोकतान्त्रिक राज्य को न तो कोई धार्मिक आयोजन करना चाहिए और न ही उसे प्रोत्साहित करना चाहिए। राज्य की ज़िम्मेदारी केवल प्रशासनिक व्यवस्था सँभालना है। लेकिन यहाँ तो **भाजपा सरकार कुम्भ के आयोजक की भूमिका में थी और कुम्भ के बहाने हिन्दू धर्मावलम्बियों के इस जमघट में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, विश्व हिन्दू परिषद, अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद, संस्कार भारती और वनवासी कल्याण आश्रम आदि कैम्प लगाकर, हिन्दू प्रतीकों का इस्तेमाल करके, नुक्कड़ नाटक, और विभिन्न माध्यमों से अपने हिन्दुत्ववादी साम्प्रदायिक एजेण्डे का खुलकर बेरोकटोक प्रचार कर रहे थे।**

बढ़ती बेरोज़गारी, छात्रों-कर्मचारियों, मज़दूरों-किसानों के आन्दोलनों से बेनकाब होती मोदी-योगी सरकार के पास वोट की फ़सल को सींचने के लिए कुम्भ, राममन्दिर, हिन्दू-मुस्लिम के नाम पर बँटवारे को और तीखा करने, राष्ट्रवाद, सेना और युद्धोन्माद के अलावा कोई रास्ता नहीं बचा है। यही कारण है कि मोदी सरकार ने लगभग चार हज़ार तीन सौ करोड़ रुपये का बजट कुम्भ की तैयारियों के नाम पर होम कर दिया। कहने को इलाहाबाद में खूब निर्माण कार्य हुआ लेकिन इसमें इतना ज़बदस्त और दिव्य भ्रष्टाचार हुआ है कि कुम्भ ख़त्म होते-होते जगह-जगह सड़कें टूटनी शुरू हो गयी हैं। यही हाल कुम्भ के नाम पर कराये गये अन्य कामों का भी है।

नेताओं-अफ़सरों-ठेकेदारों ने भ्रष्टाचार की इस गटरगंगा में जमकर गोते लगाये हैं और इतना "पुण्य" कमाया है कि उनकी कई पीढ़ियाँ तर जायेंगी।

अब इसकी सफलता के प्रचार में करोड़ों फूँक दिये जायेंगे। लेकिन इसी इलाहाबाद में इलाहाबाद विश्वविद्यालय में हॉस्टल निर्माण के लिए सरकार के ख़ज़ाने में पैसा नहीं है। केन्द्रीय विश्वविद्यालय बनने के लगभग 19 साल बाद भी 26000 छात्रों में से केवल 3601 छात्रों के लिए हॉस्टल उपलब्ध है। जबकि केन्द्रीय विश्वविद्यालय के मानक के हिसाब से कम से कम 15,600 छात्रों के लिए हॉस्टल होना ही चाहिए। हॉस्टल न मिलने और बाहर का ख़र्च न उठा सकने के कारण बहुत से छात्र अपनी पढ़ाई बीच में छोड़कर पूँजीपतियों की कम्पनियों में हड्डियाँ गलाने चले जाते हैं, तो बहुत से छात्र आत्महत्या तक के क़दम उठा रहे हैं। अभी हाल ही में रजनीकान्त नाम के एक छात्र ने हॉस्टल नहीं मिलने और प्रशासन के तानाशाहीपूर्ण रवैये के कारण आत्महत्या कर ली थी। इसी इलाहाबाद में जनवरी और फ़रवरी के महीने में लगभग 10 छात्र बेरोज़गारी और अन्य कारणों से आत्महत्या कर चुके हैं, लेकिन सत्ता में बैठे हत्यारों को यह नज़र नहीं आ रहा है क्योंकि वे इससे वोट की फ़सल तैयार नहीं कर सकते है।

लूट और मुनाफ़े पर टिकी व्यवस्था में करुणा और भावनाएँ भी बाज़ार और वर्ग के हिसाब से तय होती है। जैसे-जैसे लोकसभा चुनाव नज़दीक आ रहा है वैसे-वैसे नरेन्द्र मोदी और उनके सरकार के मन्त्रियो की भी भावनाएँ आम जनता, ग़रीबों, मज़दूरों आदि के प्रति वोट के लिए भभकती जा रही है, जिसका स्पष्ट उदाहरण कुम्भ में मोदी द्वारा सफ़ाई कर्मचारियों का पैर धोने की घटना है। यही सफ़ाईकर्मी पिछले लम्बे समय से उचित वेतन के लिए संघर्षरत हैं, वेतन बढ़ाना तो दूर इनके साथ संघर्ष कर रहे सामाजिक कार्यकर्ता हेमन्त चौधरी और अंशु मालवीय को क्राइम ब्रांच ने सरकार के इशारे पर गिरफ़्तार कर लिया, बाद में सामाजिक संगठनों के दबाव के कारण मजबूरी में उन्हें छोड़ना पड़ा। सवाल यह उठता है कि पाँच सालों से सरकार चला रहे मोदी ने सफ़ाई कर्मचारियों के लिए क्या किया। हाथ से मैला उठाने व सर पर ढोने की प्रथा ख़त्म की? महानगरों की गहरी-पक्की-ज़हरीली नालियों की गन्दगी में सफ़ाईकर्मियों का सदेह उतरना बन्द हुआ? मशीनों, ऐप और स्वचालित यन्त्रों के प्रेमी-प्रचारक प्रधानमन्त्री ने क्या ऐसी एक मशीन भी मँगवायी या लगवायी, जिससे सफ़ाईकर्मियों को सीवरेज में उतरने की ज़रूरत न पड़े? सफ़ाईकर्मियों के वेतन-भत्तों पर, उनकी सुरक्षा पर, उनके बच्चों की शिक्षा पर कोई एक योजना भी बनी? क्या ऐसा कोई अध्ययन भी हुआ कि सफ़ाईकर्मियों तक आरक्षण का लाभ कितना पहुँचा है? अगर इसका जवाब ना में है तो यह सहज ही समझा जा सकता कि पाँव पखारने के पीछे मोदी की मंशा क्या थी? असल में आम मज़दूरों, किसानों, ग़रीबों और छात्रों-नौजवानों में आधार खो चुकी भाजपा हर प्रकार के तीन तिकड़म से अपने वोट बैंक को सुरक्षित करना चाहती है और उसी दिशा में यह भी एक स्टण्ट से ज़्यादा और कुछ नहीं था।

कुम्भ के नाम पर पूरे इलाहाबाद का भगवाकरण कर दिया गया है। भारतीय संस्कृति (जिसमें कबीर, दादू, रैदास, आदि शामिल नहीं हैं) को पुनर्जागृत करने के नाम पर गंजेड़ी-नशेड़ी नागा बाबाओं, सामन्ती सामाजिक सम्बन्धों को गौरवान्वित करती हुई तस्वीरों और संघ से जुड़े तमाम फ़ासिस्टों की तस्वीरों से पूरे इलाहाबाद को रंग दिया गया है, जो आम जनता के बीच इस बात को स्थापित कर रहा है कि हर समस्या का समाधान अतीत में और हिन्दुत्व में है और अपने इस मिशन में संघी एक हद तक सफल भी हो रहे हैं। (ज्ञात हो कि सिर्फ़ पेण्टिंग के लिए 100 करोड़ रुपये ख़र्च किये गये जिसमें इलाहाबाद विश्वविद्यालय में छात्रों के लिए कम से कम चार नये हॉस्टलों का निर्माण किया जा सकता था) धर्म संसद के ज़रिये राम मन्दिर निर्माण के मुद्दे को संघ और विहिप ने ज़ोर-शोर से उठाने की कोशिश की, ये अलग बात है कि जनता से मिली ठण्डी प्रतिक्रिया के कारण बीच में ही उसे छोड़ देना पड़ गया। राम मन्दिर का मुद्दा एक ऐसा मुद्दा है जिसे संघ वालों ने पिछले ढाई दशक से ज़्यादा समय से एक शुद्ध राजनीतिक मुद्दे में बदलकर भाजपा के लिए राजनीतिक लाभ की ख़ूब फ़सल काटी है। जगह-जगह बड़े-बड़े एलईडी स्क्रीन लगाकार संघ एक तरफ़ तो हिन्दुत्व के ज़हर को फैला रही है तो वही दूसरी तरफ़ योगी-मोदी इसे भाजपा के प्रचार के लिए मंच के रूप में इस्तेमाल कर रहे हैं। देश के तथाकथित चुनावबाज़ कम्युनिस्ट पार्टियाँ अभी भी फ़ासिस्टों को चुनाव के रास्ते हराने का गुलाबी सपना देख रही हैं और जगह-जगह चुनावी गँठजोड़ में अपनी पूरी ताक़त ख़र्च कर रहे हैं। आने वाले समय में इतिहास इन तथाकथित कम्युनिस्ट पार्टियों से भी वाजिब हिसाब लेगा।

शुरू होने से पहले ही कुम्भ ने आम जनता की रोटियों पर डाका शुरू कर दिया था, गंगा-सफ़ाई के नाम पर कानपुर में स्थित तक़रीबन 400 टेनरियों यानी चमड़े की फ़ैक्टरियो को तीन महीने (15 दिसम्बर से 15 मार्च तक के लिए) उत्तर प्रदेश सरकार के निर्देशानुसार बिना किसी शिफ़्टिंग के बन्द कर दिया गया जिसकी वज़ह से इनमें काम करने वाले लगभग 10 लाख से ज़्यादा मज़दूर बेरोज़गार हो गये और उनके सामने रोज़ी-रोटी का संकट पैदा हो गया। गंगा को 100 प्रतिशत साफ़ करने के वादे के साथ सत्ता में आयी भाजपा सरकार ने इसके लिए एक अलग ही मन्त्रालय बना दिया और नमामि गंगे योजना के तहत गंगा की सफ़ाई के नाम पर कई सौ करोड़ रुपये आवंटित भी किये गये। गंगा साफ़ न होने की दशा में जल समाधि लेने वाली उमा भारती ने अपना मुँह सी लिया है। गंगा की सफ़ाई तभी सम्भव है जब हरिद्वार से लेकर कलकत्ता तक की सभी फ़ैक्टरियों से निकलने वाले कचरे को बिना शोधित किये गंगा में प्रवाहित करने पर रोक लगायी जाये। लेकिन यह इस पूँजीवादी व्यवस्था में सम्भव ही नहीं है क्योंकि भाजपा, सपा, कांग्रेस, बसपा जैसी सभी बुर्जुआ चुनावी पार्टियों को चुनावी फ़ण्डिंग इन्हीं के मालिकों से होती है। वास्तव में ये पार्टियाँ इन्हीं पूँजीपतियों की मैनेजिंग कमेटी के रूप में काम करती हैं और उनकी मुनाफ़े की दर को बरक़रार रखने के लिए वो हरिद्वार से लेकर कन्नौज, फ़र्रुख़ाबाद, कानपुर, उन्नाव, पटना और कलकत्ता तक फैले इन उद्योगों पर पूँजीवादी व्यवस्था के रहते कोई शिकंजा नहीं कसेंगी। रस्मी तौर पर जनता को फुसलाने के लिए 2-3 महीने के लिए इसको बन्द कर देने से भी आम ग़रीब जनता ही भूखों मरेगी और न बन्द होने की दशा में प्रदूषण फैलेगा तो कैंसर जैसी ख़तरनाक बीमारियों की चपेट में भी सबसे ज़्यादा मज़दूर और निम्न मध्यम वर्ग की ही आबादी आयेगी। वास्तव में मुनाफ़ा केन्द्रित इस व्यवस्था में हर परेशानी आम जनता झेलती है और सारी मलाई पूँजीपति और नेता-मन्त्री खाते हैं।

कुम्भ के इस आयोजन के दौरान संघ और भाजपा अपने आकाओं के लिए धर्म को धन्धे में तब्दील करने की जुगत में लगे हुए थे। मूर्तियों के निर्माण से लेकर एक महीने के लिए गंगा किनारे अस्थाई शहर बसाने के नाम पर धर्म में बाज़ार के लिए पूरी सम्भावना पैदा कर दी थी, जिसमें छुटभइये से लेकर बड़े पूँजी के टुकड़खोरों तक ने पैसा लगाकर ख़ूब कमाई की। इस बार का कुम्भ मुनाफ़ा पैदा करने वाला एक धार्मिक-राजनीतिक आयोजन बन गया था। नागा साधुओं और ढोंगी बाबाओं के लिए बनाये गये टेण्ट सिटी के नाम पर कुम्भ क्षेत्र के आस पास के दर्ज़नों गाँवों, सैकड़ों झुग्गियों को उजाड़ दिया गया। टेण्ट सिटी की इस चकाचौंध ने सैकड़ों लोगों को बेघर कर दिया और दिसम्बर और जनवरी की कड़कड़ाती ठण्ड में लोगों के लिए खुले आसमान के नीचे रात गुज़ारने के अलावा उनके सामने कोई उपाय नहीं छोड़ा गया। स्मार्ट सिटी के नाम पर हज़ारों ठेले-खोमचे वालों को सड़क-किनारे से बेदख़ल कर दिया गया जिससे उनके सामने कमाने-खाने और परिवार पालने तक का संकट पैदा हो गया था।

भाजपा सरकार का चेहरा चमकाने के लिए जिन मज़दूरों को काम पर रखा गया था, उनके साथ सरकार और ठेकेदार दोनों छल कर रहे हैं। कुम्भ के दौरान काम करने वाले सफ़ाई कर्मचारियों के लिए प्रशासन के दबाव के कारण 12 घण्टे की दिहाड़ी 315 प्रतिदिन का तय किया गया था जो पहले 295 रुपये था लेकिन कुम्भ बीतने के बाद भी कुल मिलने वाली रक़म का लगभग 15 प्रतिशत रक़म ही ठेकेदारों ने मज़दूरों को दी है और प्रशासन भी इस मुद्दे पर पूरी तरह चुप्पी साधे बैठा है।

अख़बार इन ख़बरों से पटे रहते थे कि कुम्भ को सुगम बनाने के लिए किस तारीख़ को कितनी हज़ार बसें चलायी जायेंगी, लेकिन जो लोग इस कुम्भ को सुगम बनाने में जुटे हुए थे उनकी ख़बर लेने वाला कोई नहीं था। कुम्भ के मद्देनज़र बनाये गये अस्थाई बेला कछार डिपो पर परिवहन निगम का दफ़्तर और अधिकारियों के लिए आवास की व्यवस्था तो थी लेकिन चालकों और परिचालकों के लिए एक भी टेण्ट मौजूद नहीं था। पीने के पानी के लिए नल तक का इन्तज़ाम नहीं था। कर्मचारियों की एकजुटता की वजह से नल लगा भी तो वो पर्याप्त नहीं था। स्थाई और अस्थाई कर्मचारियों को 150 रुपये रोज़ नगर निगम द्वारा भत्ता देने की बात कही गयी थी लेकिन अभी तक स्थाई कर्मचारियों को केवल 1650 रुपये ही मिले हैं और अस्थाई को तो वो भी नहीं मिला। यही हालत कमोबेश सभी अस्थाई बस डिपो की है। लखनऊ के लिए सड़क को ही डिपो बना दिया गया था यानी उनके लिए ये सब सुविधाएँ नहीं थीं। मतलब यह कि सरकार और ठेकेदारों के लिए भले ही यह सुगम कुम्भ रहा हो लेकिन आम कर्मचारियों के लिए यह कहीं से सुगम नहीं था।

जिनके दम पर सुरक्षित कुम्भ का दम्भ भरते उपमुख्यमन्त्री केशव प्रसाद मौर्य से लेकर योगी-मोदी तक नहीं थक रहे हैं, असल में वही सुरक्षाकर्मी ख़ुद बेहद असुरक्षा में जीने को मजबूर हैं। कुम्भ मेले में सुरक्षा देने के लिए मुम्बई स्थित निजी एजेंसी आरएमबी को ठेका दिया गया था। इस एजेंसी ने सुरक्षा का ठेका कई छोटे-छोटे ठेकेदारों को बाँट दिया। **बेरोज़गारी का दंश झेल रहे हज़ारों युवा बिना किसी लिखित कॉन्ट्रैक्ट के ठेकेदारों के मार्फ़त कुम्भ में सुरक्षा देने के नाम पर अपनी सुरक्षा को दाँव पर लगाने को मजबूर हो गये। बेरोज़गार नौजवानों की मजबूरी का फ़ायदा उठाकर ठेकेदारों ने इनसे 24-24 घण्टे तक भी काम लिया और इनको न्यूनतम मज़दूरी भी नहीं दी गयी। मेले में यात्री निवासों की सुरक्षा में लगी वीरेन्द्र प्रोटेक्शन फोर्स नाम की एजेंसी ने 24 घण्टे काम के लिए 14500 रुपये महीने के आश्वासन देकर नौजवानों को काम पर रखा था, लेकिन सेक्टर 6 स्थित यात्री निवास में काम कर रहे सुरक्षाकर्मियों को 11 जनवरी से 20 फ़रवरी तक की अवधि में 500 से 1000 रुपये तक ही मिले हैं।**

विदेशी सैलानियों की तस्वीरें, दिव्य कुम्भ की जगमग और चमकते विज्ञापनों, बड़े-बड़े मठाधीशों के चकाचौंध भरे फ़ाइव स्टार पण्डालों, सरकारी विज्ञापनों, नेताओं-मन्त्रियों की डुबकियों, नागा बाबाओं के चमत्कार और हिन्दुत्व के प्रचार के नीचे इस कुम्भ में इंसानियत की कराहती आवाज़ों को दबा दिया जा रहा है।

– अविनाश

डाइकिन के मज़दूरों का संघर्ष ज़िन्दाबाद!

आठ जनवरी 2019 को देशव्यापी हड़ताल के दौरान डाइकिन व अन्य कारख़ानों के मज़दूर निमराना औद्योगिक क्षेत्र में शान्तिपूर्ण ढंग से अपनी रैली निकाल रहे थे। रैली जब डाइकिन कारख़ाने के मुख्य गेट के सामने से निकली तब कारख़ाना प्रबन्धन की शह पर पहले से ही तैयार बैठे गुण्डे-बाउंसरों के साथ पुलिस ने मज़दूरों के ऊपर हमला कर दिया। कम्पनी इस हमले की तैयारी पहले से कर रही थी। गुण्डे-बाउंसरों को होटलों में ठहराया गया था, सुबह के वक़्त रैली के लिए पर्चा बाँट रहे मज़दूरों के ऊपर भी हमला हुआ किया गया था। मज़दूरों के ऊपर हमला करने के लिए इस्तेमाल किये जा रहे डण्डों पर पहले से ही कीलें लगा कर तैयारी की गयी थी, जिसकी वजह से मज़दूरों को काफ़ी गम्भीर चोटें आयीं। इस हमले में क़रीब चालीस मज़दूर बुरी तरह से घायल हुए। दमन का चक्र ठहरा नहीं, उसी रात मज़दूरों के कमरों पर जाकर न सिर्फ़ उनके साथ हाथापाई, बदसलूकी की गयी बल्कि कई मज़दूरों को पुलिस द्वारा गिरफ़्तार भी किया गया। रात में चौदह मज़दूरों को उनके घर से गिरफ़्तार किया गया। हालाँकि बाद में उन मज़दूरों को छोड़ दिया गया। किन्तु, मज़दूरों पर झूठे मुक़दमे थोप दिये गये, जिसके तहत 307 जैसी गम्भीर धाराएँ भी लगयी गयी। यह रिपोर्ट लिखे जाने के वक़्त तक यूनियन के सचिव रुकमुद्दीन समेत अट्ठारह मज़दूर जेल में बन्द हैं। एक झटके में 450 स्थायी और 500 अस्थायी श्रमिकों को काम से निकाल दिया गया। ग़ौरतलब है कि, मज़दूर जब भी यूनियन पंजीकरण या किसी अन्य मुद्दे के लिए संघर्ष करते हैं, तब प्रशासन-मालिकान मिलकर उसे झूठे मुक़दमों में उलझा कर उनकी आवाज़ को दबा देते हैं। चाहे हौण्डा टप्पूकड़ा का उदाहरण हो या मारुति मानेसर का, हर जगह यही कहानी दोहरायी गयी है।

डाइकिन के मज़दूर नीमराना औद्योगिक क्षेत्र में सबसे जुझारू मज़दूरों में से एक हैं। अन्य कारख़ानों के मज़दूरों के ऊपर हो रहे दमन का मामला हो या डाइकिन मज़दूरों के तबादले, निलम्बन, निष्कासन का मुद्दा या अस्थायी मज़दूरों को स्थायी करने की माँग, वे हमेशा संघर्ष करते रहे हैं। वे 2013 से अपनी यूनियन को पंजीकृत करवाने के लिए संघर्ष लड़ हैं।

वर्ष 2013 में मज़दूरों की यूनियन पर स्टे लगा दिया गया था और कम्पनी द्वारा उसके बाद 125 मज़दूरों को निलम्बित कर दिया था। मज़दूरों के दबाव के चलते कम्पनी ने पहले तो निकाले गये मज़दूरों को काम पर वापिस रखने का आश्वासन दिया, लेकिन मज़दूरों को काम पर बहाल करने की जगह 125 निलम्बित मज़दूरों में से 89 को बर्ख़ास्त कर दिया। इसके बावजूद मज़दूरों ने हिम्मत नहीं हारी और लगातार कम्पनी पर निकाले गये मज़दूरों को काम पर वापिस रखने का दबाव बनाये रखा। जिसके फलस्वरूप कम्पनी को 39 मज़दूरों के अलावा अन्य मज़दूरों को दोबारा काम पर बहाल करने के लिए मजबूर होना पड़ा। कम्पनी ने एक लिखित समझौते के तहत बाक़ी 39 श्रमिकों को एक जाँच कमिटी गठित कर 80 दिन के भीतर काम पर वापिस रखने का वादा किया। सिर्फ़ मैनेजमेण्ट के प्रतिनिधियों से मिलकर बनी इस एक तरफ़ा कमिटी ने बर्ख़ास्त किये गये 39 मज़दूरों में से सिर्फ़ 21 मज़दूरों को काम पर वापिस लेने का फ़ैसला किया। इसके अलावा 400 ठेका मज़दूरों को भी काम से निकाल दिया गया। अपने संघर्ष को आगे बढ़ाते हुए मज़दूरों ने साल 2015 में अनिश्चितकाल के लिए श्रम विभाग, जयपुर पर धरना भी दिया। उन्होंने यूनियन पंजीकरण के लिए दोबारा से फ़ाइल लगायी। इस बीच कारख़ाना प्रबन्धन द्वारा मज़दूरों को निलम्बन, निष्कासन, तबादला करने की प्रक्रिया जारी रही। कारख़ाना प्रबन्धन ने सरकार-प्रशासन के साथ मिलकर दोबारा पंजीकरण प्रक्रिया को रोकने का प्रयास किया। लेकिन मज़दूर पीछे नहीं हटे और उन्होंने तीसरी बार यूनियन पंजीकरण के लिए फ़ाइल लगायी। इस दफ़ा मज़दूरों के संघर्ष की ताक़त और अदालत के हस्तक्षेप के कारण कम्पनी प्रबन्धन अपनी चाल में कामयाब नहीं हो सका और यूनियन को पंजीकरण मिल गया। किन्तु कारख़ाना प्रबन्धन यूनियन को मान्यता देने के लिए तैयार नहीं था। उसने यूनियन से बात करने से इंकार कर दिया, तथा मज़दूरों को झण्डा नहीं लगाने दिया गया।

इसी क्रम में 8 जनवरी 2019 को हुई देशव्यापी हड़ताल के दौरान मज़दूर जब अपनी रैली निकाल रहे थे तब उन पर हमला किया गया। मज़दूरों पर झूठे मुक़दमे लगाये गये और उन्हें गिरफ़्तार किया गया। तथा एक झटके में क़रीब एक हज़ार मज़दूरों को काम से निकाल दिया। 8 जनवरी के बर्बर लाठीचार्ज और मज़दूरों की झूठे केस थोप कर की गयी गिरफ़्तारी के बाद नीमराना एसडीएम कार्यालय पर मज़दूरों की त्रिपक्षीय बैठक जब किसी निष्कर्ष तक नहीं पहुँची तो अपने गिरफ़्तार साथियों की जल्द रिहाई और काम से निकाले गये मज़दूरों की बहाली के लिए डाइकिन मज़दूरों ने 5 फ़रवरी 2019 को एसडीएम कार्यालय पर मज़दूर पंचायत का आह्वान किया। अपने संघर्ष से इलाक़े के अन्य मज़दूरों को जोड़ने और उनका समर्थन हासिल करने के लिए 17 फ़रवरी 2019 को नीमराना में मज़दूर रैली निकाली गयी। रैलियों और सभाओं के ज़रिये लगातार पूरे सेक्टर के मज़दूरों से आह्वान किया गया कि वो भी डाइकिन के मज़दूरों के समर्थन में आगे आये। डाइकिन के मज़दूरों ने एक बार फिर कम्पनी प्रबन्धन पर दबाव बनाने और अपनी माँगें मनवाने के लिए 20 फ़रवरी से क्रमिक अनशन पर बैठने का फ़ैसला लिया। डाइकिन के मज़दूरों का संघर्ष अभी भी अलवर ज़िला मुख्यालय पर क्रमिक अनशन के रूप में जारी है। ज़िला प्रशासन मज़दूरों के ग़ुस्से को शान्त करने के लिए मध्यस्थता करने के लिए मजबूर तो हुआ लेकिन कम्पनी के साथ कई चक्र वार्ताओं के बाद भी मज़दूरों की माँगें नहीं मानी जा रही हैं। डाइकिन मज़दूरों के इस संघर्ष में ऑटोमोबाइल इण्डस्ट्री कॉण्ट्रैक्ट वर्कर्स यूनियन और बिगुल मज़दूर दस्ता लगातार साथ खड़ा है। 8 फ़रवरी को डाइकिन मज़दूरों पर हुए लाठीचार्ज के विरोध में ऑटोमोबाइल इण्डस्ट्री कॉण्ट्रैक्ट वर्कर्स यूनियन ने पूरे इलाक़े के मज़दूरों के बीच पर्चा वितरण किया। साथ ही दिल्ली स्थित बीकानेर हाउस पर आयोजित प्रदर्शन में शिरकत कर राजस्थान सरकार से भी डाइकिन मज़दूरों पर हुए बर्बर पुलिसिया लाठीचार्ज की भर्त्सना की। डाइकिन मज़दूरों के साथ हो रहे अन्याय के ख़िलाफ़ पूरे सेक्टर के मज़दूरों को आवाज़ उठानी ही होगी। क्योंकि जो आज डाइकिन के मज़दूरों के साथ हो रहा है, वही इस सेक्टर में काम करने वाले हर मज़दूर की कहानी है। फ़ैक्टरी या कम्पनी का नाम बदल जाने से वहाँ काम कर रहे मज़दूरों की समस्याएँ नहीं बदलतीं। जो परेशानियाँ डाइकिन के मज़दूरों की हैं, ठीक वही समस्याएँ अन्य कम्पनियों में काम कर रहे मज़दूरों की है। आज अलग-अलग फ़ैक्टरियों में मज़दूरों के अधिकारों का हनन बेरोकटोक एक ही तरीक़े से किया जा रहा है। इस शोषण को रोकने का और अपने अधिकार हासिल करने का सिर्फ़ एक ही रास्ता है और वो है सेक्टरगत एकता स्थापित करना। आज डाइकिन मज़दूरों के बहादुर साथियों के संघर्ष के समर्थन में नीमराना के हर मज़दूर को आगे आना होगा।

– बिगुल संवाददाता

8 मार्च अन्तरराष्ट्रीय स्त्री दिवस के अवसर पर कार्यक्रम

घरेलू कामगारों और स्त्री-मज़दूरों के बीच फ़िल्म-शो का आयोजन

दिल्ली के शाहबाद डेरी इलाक़े में **दिल्ली घरेलू कामगार यूनियन** ने घरेलू कामगारों के जीवन एवं काम की परिस्थितियों पर बनी फ़िल्म 'अनसुनी आवाज़ें' का प्रदर्शन किया एवं 8 मार्च के ऐतिहासिक महत्त्व के बारे में बातचीत की गयी। 'अनसुनी आवाज़ें' फ़िल्म दिल्ली की शानदार और चमचमाती कोठियों में बसनेवालों की ज़िन्दगी आसान बनानेवालों की कहानी कहती है। फ़िल्म बताती है कि देश की एक बड़ी आबादी दिल्ली जैसे महानगरों में अपनी मेहनत को कौड़ियों के मोल बेचने को मजबूर है और गुमनामी में जी रही है। फ़िल्म यह भी बताती है कि घरेलू कामगारों की यह आबादी 10 घण्टे खटने के बाद भी मज़दूर का दर्जा पाने से वंचित है। ऐसा इसलिए है कि इनके लिए अभी तक कोई क़ानून नहीं है। फ़िल्म इस बात को भी रेखांकित करती है कि घरेलू कामगारों को अपने लिए क़ानून बनवाने के लिए सरकार को बाध्य करना पड़ेगा और यह काम बिना एकजुट हुए और बिना संघर्ष के नहीं हो सकता।

यूनियन की अदिति ने बात रखते हुए कहा कि 8 मार्च का यह ऐतिहासिक दिन हमें यह प्रेरणा देता है कि संघर्षों में रुकेंगे नहीं और अपना हक़ लेकर रहेंगे। उन्होंने 8 मार्च के इतिहास के बारे में बात रखते हुए बताया कि 8 मार्च 1857 को अमेरिका के न्यूयॉर्क शहर के कपड़ा मिलों में काम करने वाली स्त्री मज़दूरों ने वेतन में बढ़ोत्तरी, काम के घण्टे 10 करने, काम की स्थितियों में बेहतरी करने और स्त्री-मज़दूरों के लिए समान अधिकारों की माँग रखते हुए विरोध प्रदर्शन किया। उस समय न्यूयॉर्क के कपड़ा मिलों में महिलाओं से 15 से 16 घण्टे तक काम लिया जाता था। काम की स्थितियाँ बहुत बदतर थीं। इसी कड़ी में 8 मार्च 1908 को न्यूयॉर्क में ही सिलाई करने वाली स्त्री मज़दूरों ने वोट देने के अधिकार और बाल मज़दूरी को ख़त्म करने की माँग करते हुए हड़ताल की। 1910 में कोपेनहेगेन में दुनिया भर की मज़दूर पार्टियों के अन्तरराष्ट्रीय मंच ने अन्तरराष्ट्रीय महिला सम्मलेन का आयोजन किया। इसी सम्मलेन में क्रान्तिकारी नेता क्लारा जेटकिन ने यह प्रस्ताव रखा कि 8 मार्च को अन्तरराष्ट्रीय स्त्री दिवस के रूप में पूरी दुनिया में मनाया जाये। तब से पूरी दुनिया में 8 मार्च अन्तरराष्ट्रीय स्त्री दिवस के रूप में मनाया जाता है। यह दिन महिला मज़दूरों के संघर्षों की यादिहानी और हमारे समय में नये संकल्प लेने और संघर्षों के लिए उठ खड़े होने की प्रेरणा देता है।

स्त्री मज़दूर संगठन की बीना ने कहा कि पूँजीवादी समाज में स्त्रियाँ दोहरे उत्पीड़न का शिकार होती हैं – एक तो पूँजी की ग़ुलामी और दूसरी तरफ़ पितृसत्तात्मक ग़ुलामी। हम अपने आसपास, फ़ैक्टरियों तथा जिन घरों में हम काम करते हैं वहाँ लगातार इस सामाजिक मानसिकता के दंश को झेल रहे हैं। आज के समय में जब हमारे जीवन को पूँजी की लूट ने बद से बदतर बना दिया है तो ठीक इसी कारण आज हमें उठ खड़े होने की ज़रूरत भी सबसे ज़्यादा है। आज समाज के पोर-पोर में पैठी स्त्री दलित, अल्पसंख्यक और मज़दूर विरोधी मानसिकता और फासीवादी राजनीति के ख़िलाफ़ लगातार संगठित होने की ज़रूरत है।

दिल्ली घरेलू कामगार यूनियन की कार्यकारिणी सदस्य मरजीना ने कहा कि हमें अपनी यूनियन को और भी अधिक मजबूत करने की ज़रूरत है। इस दुनिया की आधी आबादी औरतों की है और बिना औरतों के लड़े दुनिया के हालात नहीं बदलने वाले।

इस कार्यक्रम में घरेलू कामगारों के साथ-साथ स्त्री मज़दूरों ने हिस्सा लिया। नौजवान भारत सभा के युवा सदस्यों ने कार्यक्रम के प्रबन्धन और संचालन में उत्साहपूर्वक भागीदारी की। कार्यक्रम के अन्त में झूठी और युद्धोन्माद की राजनीति फैलानेवाली गोदी मीडिया के बहिष्कार का संकल्प लिया गया।

देहरादून में फ़िल्म शो और बातचीत

'स्त्री मुक्ति लीग' और 'उत्तराखण्ड महिला मंच' द्वारा अन्तरराष्ट्रीय महिला दिवस के अवसर पर एमकेपी कॉलेज, देहरादून में बहुचर्चित ईरानी फ़िल्म की स्क्रीनिंग और उस पर बातचीत की गयी। इस अवसर पर स्त्री मुक्ति लीग द्वारा 'मुक्ति के स्वर' पोस्टर प्रदर्शनी भी लगायी गयी जिसमें स्त्रियों की ग़ुलामी के इतिहास को दिखाया गया।

स्त्री मुक्ति लीग की संयोजिका कविता कृष्णपल्लवी ने कहा कि निजी सम्पत्ति और वर्गों के उद्भव के साथ स्त्री दासता पैदा हुई और उनकी समाप्ति के साथ ही स्त्री मुक्ति का भविष्य जुड़ा हुआ है। इक्कीसवीं सदी में भी स्त्रियाँ दोहरी ग़ुलामी की ज़ंजीरों में जकड़ी हुई हैं। एक तरफ़ पुरुष सत्तात्मक समाज की पुरुष वर्चस्ववादी घरेलू सामाजिक ग़ुलामी है, वहीं दूसरी ओर पुरुष पर आर्थिक परावलम्बिता। बेशक, स्त्रियों को आर्थिक स्वावलम्बिता और निजी आज़ादी की साहसिक लड़ाई लड़नी ज़रूरी है, पर व्यापक सामाजिक मुक्ति से इसे जोड़े बग़ैर निजी ज़िन्दगी में भी कोई ताज़गी और ऊर्जस्विता नहीं बची रह पायेगी। स्त्रियों को अपनी सामाजिक-आर्थिक ग़ुलामी की बेड़ियों को तोड़ने के लिए व्यापक एकजुटता क़ायम करनी होगी। उनकी लड़ाई पुरुषों से नहीं पुरुष वर्चस्ववादी सामाजिक आर्थिक तानेबाने से है।

उत्तराखण्ड महिला मंच की कमला पन्त ने कहा कि अन्तरराष्ट्रीय महिला दिवस स्त्रियों के स्वाभिमान, आज़ादी और संघर्ष का प्रतीक दिन है। यह दिन पूरी दुनिया की औरतों के एकजुट होने और अपनी सामाजिक-आर्थिक ग़ुलामी को तोड़ने के संकल्प का दिन है। स्त्री मुक्ति का सवाल सिर्फ़ पढ़ने, नौकरी कर लेने और अपने विचार रख लेने तक ही सीमित नहीं है, बल्कि यह आधी आबादी की अस्मिता, स्वाभिमान और उस चीज़ में बराबरी के अधिकार की लड़ाई है जो पुरुष-सत्तात्मक समाज ने स्त्रियों को सिर्फ़ "स्त्री" होने के नाते उससे वंचित कर दिया है।

इस अवसर पर ईरानी फ़िल्मकार मर्जिएह मेश्किनी की विश्व प्रसिद्ध फ़िल्म 'THE DAY I BECAME A WOMAN' (वह दिन जब मैं औरत

(पेज 12 पर जारी)

मज़दूरों-मेहनतकशों ने बनायी अपनी क्रान्तिकारी पार्टी!

(पेज 1 से आगे)

किया जाये। 'भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी' (RWPI) इसी बेहद महत्वपूर्ण ज़रूरत को पूरा करने के लिए अस्तित्व में आयी है।

'मज़दूर बिगुल' के पाठक इस बात से वाक़िफ़ होंगे कि **हमारा शुरू से यह मानना रहा है कि पूँजीवादी चुनावों में मज़दूर वर्ग को रणकौशलात्मक (टैक्टिकल) हस्तक्षेप करना चाहिए।** फ़रवरी 2017 के 'मज़दूर बिगुल' के सम्पादकीय में भी हमने मज़दूर वर्ग की ओर से पूँजीवादी चुनावों में रणकौशलात्मक भागीदारी की ज़रूरत को रेखांकित किया था। 'भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी' के गठन के साथ हमें इस बात की फिर से ज़रूरत महसूस हो रही है कि पूँजीवादी चुनावों में मज़दूर वर्ग के संगठित रणकौशलात्मक (टैक्टिकल) हस्तक्षेप के महत्व को रेखांकित किया जाये। इसलिए हम इस बार आपके समक्ष पूँजीवादी चुनावों में कम्युनिस्टों की ओर से क्रान्तिकारी रणकौशलात्मक हस्तक्षेप और उनके क्रान्तिकारी संसदवाद पर विस्तार से बात रखेंगे और इस बाबत हमारे महान शिक्षकों यानी कि मार्क्स, एंगेल्स, लेनिन, स्तालिन और माओ के विचारों को आपसे साझा करेंगे और आज के दौर में उनके विचारों की एक नये सन्दर्भ और नये अर्थों में प्रासंगिकता की बात करेंगे। लेकिन सबसे पहले इस बारे में बात करना ज़रूरी है कि **'भारत की क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट पार्टी (RWPI)' क्या है? उसके लक्ष्य क्या हैं? उसका स्वरूप क्या है? RWPI के ज़िम्मेदार प्रवक्ताओं ने 'मज़दूर बिगुल' से इस बारे में अपनी राय साझा की है और उन्हें अपना चुनाव घोषणापत्र दिया है, जिसके आधार में हम RWPI के लक्ष्य, स्वरूप, वित्तीय आधार, वर्ग चरित्र आदि की चर्चा करेंगे।**

भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी (RWPI) क्या है?

भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी (RWPI) एक क्रान्तिकारी पार्टी है, जो कि स्वयं मज़दूरों, मेहनतकशों और उनके ऐसे राजनीतिक संगठनकर्ताओं द्वारा बनायी गयी है, जो मज़दूर आन्दोलनों की गरमी में परिपक्व हुए हैं, शिक्षित हुए हैं और मज़दूरों-मेहनतकशों को नेतृत्व दे रहे हैं। इस पार्टी का गठन नवम्बर 2018 में देश के कई राज्यों से एकत्रित हुए मज़दूरों, मेहनतकशों और उनके बीच काम कर रहे संगठनकर्ताओं ने किया। इसके बाद, दिसम्बर 2018 में इस नयी पार्टी ने अहमदनगर, महाराष्ट्र में निगम पार्षद के चुनाव में एक सीट पर चुनाव लड़ा और पूँजीवादी दलों द्वारा धनबल, शराब और बाहुबल के नग्न उपयोग के बावजूद क़रीब हज़ार वोटों के साथ चौथे स्थान पर आयी। लेकिन **चूँकि समाजवादी कार्यक्रम को जनता के बीच परिचित और लोकप्रिय बनाने के मामले में सबसे अहम चुनाव होते हैं राष्ट्रीय विधायिका यानी कि संसद के चुनाव, इसलिए इस बार यह पार्टी लोकसभा चुनावों में चार राज्यों की सात सीटों (दिल्ली की दो सीटें, महाराष्ट्र की दो सीटें, हरियाणा की दो सीटें और उत्तर प्रदेश की एक सीट) पर अपने उम्मीदवार खड़े कर रही है। इसके अलावा, मज़दूरों और मेहनतकशों के बीच पंजाब, बिहार, उत्तराखण्ड और केरल में पार्टी के सदस्यों और वॉलण्टियरों की तैयारी का काम शुरू कर दिया गया है, जिससे कि आने वाले चुनावों में और अधिक सीटों पर मज़दूर वर्ग की ओर से क्रान्तिकारी राजनीतिक हस्तक्षेप किया जा सके।**

'भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी' मज़दूर वर्ग की एक हिरावल पार्टी है जो कि मार्क्सवाद-लेनिनवाद के क्रान्तिकारी उसूलों में यक़ीन करती है। यह पार्टी मानती है कि सर्वहारा वर्ग का ऐतिहासिक लक्ष्य है कि वह क्रान्तिकारी रास्ते से बुर्जुआ राज्यसत्ता का ध्वंस करके सर्वहारा वर्ग की सत्ता क़ायम करे और समाजवादी व्यवस्था का निर्माण करे। RWPI का मानना है कि मज़दूर सत्ता और समाजवादी व्यवस्था अन्ततः इसी रास्ते से बन सकते हैं। लेकिन समाजवादी क्रान्ति से पहले भी एक सही क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट पार्टी को पूँजीवादी चुनावों में मज़दूर वर्ग के स्वतन्त्र क्रान्तिकारी पक्ष की हैसियत से हस्तक्षेप करना चाहिए और यदि वह संसद में अपने प्रतिनिधि भेजने में सफल होती है, तो उसे पूँजीवादी संसद के भीतर से पूँजीवादी संसदीय व्यवस्था की असलियत को आम मेहनतकश जनता के समक्ष उजागर करना चाहिए, ऐसे पूँजीवादी जनवादी अधिकारों को आम मेहनतकश जनता तक पहुँचाने के लिए हरसम्भव प्रयास करना चाहिए जो कि महज़ काग़ज़ पर उन्हें मिले हुए हैं, वास्तव में हासिल नहीं हैं, और आम मेहनतकश जनता के जीवन में सुधार के लिए जो भी सीमित कार्य किये जा सकते हैं, वे करने चाहिए।

भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी का मानना है कि आम मेहनतकश जनता के एक अच्छे-ख़ासे हिस्से को आज भी यह लगता है कि पूँजीवादी संसदीय लोकतन्त्र उसे कुछ दे सकता है और इसीलिए वह कभी इस तो कभी उस पूँजीवादी पार्टी को चुनावों में वोट देती है। अगर ऐसा नहीं होता तो वह वोट ही नहीं देती। क़रीब 70 फ़ीसदी जनता द्वारा मतदान किये जाने की व्याख्या वोटों को ख़रीदने आदि से नहीं की जा सकती है। निश्चित तौर पर, आम मेहनतकश जनता के भी एक अच्छे-ख़ासे हिस्से के पूँजीवादी जनवादी विभ्रम बने हुए हैं, यानी उन्हें यह लगता है कि पूँजीवादी संसद अभी भी कम-से-कम आंशिक रूप से राजनीतिक तौर पर प्रासंगिक है। यह विभ्रम महज़ राजनीतिक प्रचार के ज़रिये नहीं दूर किया जा सकता है, बल्कि पूँजीवादी चुनावों में हस्तक्षेप करके व्यावहारिक उदाहरण के ज़रिये ही दूर किया जा सकता है।

आम मेहनतकश जनता में भी तीन संस्तर होते हैं : पहला, जो कि राजनीतिक रूप से बेहद उन्नत है; दूसरा, जो कि राजनीतिक रूप से मध्यवर्ती स्थिति रखता है; और तीसरा, जो कि राजनीतिक रूप से पिछड़ी चेतना का शिकार है। केवल बेहद उन्नत राजनीतिक तत्व ही महज़ क्रान्तिकारी पार्टी के राजनीतिक प्रचार से पूँजीवादी संसदीय जनवाद की सीमाओं को समझ पाते हैं और यह समझ लेते हैं कि इस प्रकार का पूँजीवादी जनवाद कभी मज़दूर वर्ग को वास्तविक प्रतिनिधित्व नहीं दे सकता क्योंकि ऐसे पूँजीवादी जनवाद की चुनावी व्यवस्था में अन्ततः पूँजीपति वर्ग का धनबल ही निर्णायक शक्ति की भूमिका निभाता है। आज ही देख लें : एक लोकसभा उम्मीदवार को 25 हज़ार रुपये की जमानत राशि जमा करनी होती है, एक निर्वाचन क्षेत्र में औसतन 12 लाख से भी अधिक वोटर होते हैं, जिनमें चुनाव प्रचार ही आयोजित करने के लिए करोड़ों रुपये ख़र्च किये जाते हैं। ऐसे में क्या कोई मज़दूर, कोई ग़रीब किसान, कोई आम मेहनतकश व्यक्ति पूँजीवादी चुनावों में खड़ा हो सकता है? नहीं! वास्तव में, **ग़रीब आबादी को केवल चुनने का अधिकार होता है, चुने जाने का नहीं।** ऐसे में, पूँजीवादी संसदीय जनवाद की चुनावी व्यवस्था में मज़दूर वर्ग को केवल यह अधिकार होता है कि वह पूँजीपतियों की पार्टियों, यानी भाजपा, कांग्रेस, सपा, बसपा, अकाली दल, आम आदमी पार्टी, जदयू, जद (सेकू), राजद, द्रमुक, अन्नाद्रमुक, टीडीपी, टीआरएस, तृणमूल कांग्रेस, माकपा, भाकपा आदि में से किसी एक को चुन ले। आम मेहनतकश आबादी के उन्नत तत्व इस बात को राजनीतिक प्रचार से ही समझ सकते हैं और अक्सर स्वयं ही समझ भी जाते हैं। लेकिन दूसरी और तीसरी श्रेणी की आबादी यानी मध्यवर्ती राजनीतिक तत्व और पिछड़े राजनीतिक तत्व महज़ राजनीतिक प्रचार से पूँजीवादी संसदीय जनवाद की राजनीतिक अप्रासंगिकता को नहीं समझते हैं। वे केवल और केवल व्यावहारिक अनुभव के ज़रिये ही समझ सकते हैं कि पूँजीवादी संसदीय जनवाद मज़दूर वर्ग और आम मेहनतकश आबादी को बुनियादी जनवादी अधिकार नहीं दे सकता है और इन बुनियादी जनवादी अधिकारों को सुनिश्चित करने के लिए समाजवादी व्यवस्था और मज़दूर सत्ता अनिवार्य और अपरिहार्य है। **ऐसे में, यह एक ज़रूरी कार्यभार है कि क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट पार्टी पूँजीवादी चुनावों और संसद, विधानसभाओं आदि में मज़दूर वर्ग के स्वतन्त्र राजनीतिक पक्ष के तौर पर रणकौशलात्मक हस्तक्षेप करे और पूँजीवादी संसदीय जनवाद की असलियत को न सिर्फ़ बाहर से बल्कि अन्दर से भी आम मेहनतकश जनता के समक्ष उजागर करे। आज इस काम को कोई भी पार्टी नहीं कर रही है क्योंकि आम मेहनतकश आबादी की कोई क्रान्तिकारी पार्टी मौजूद ही नहीं है जो कि सर्वहारा वर्ग का हिरावल हो और समस्त मेहनतकश जनता की नेतृत्वकारी कोर हो।** 'भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी' के गठन का वास्तविक उद्देश्य एक ऐसी ही पार्टी का निर्माण है जो कि न सिर्फ़ समाजवादी क्रान्ति और मज़दूर सत्ता की स्थापना के दूरगामी राजनीतिक लक्ष्य के लिए आज ही से काम करे, बल्कि ठीक इसी लक्ष्य को पूरा करने के लिए आज ही से सभी राजनीतिक क्षेत्रों और प्रक्रियाओं में, जिसमें कि पूँजीवादी चुनाव भी शामिल हैं, मज़दूर वर्ग के स्वतन्त्र राजनीतिक पक्ष को पेश करे और उन्हें राजनीतिक रूप से एक अलग वर्ग के तौर पर संगठित करे, ताकि वह समस्त आम मेहनतकश जनता को क्रान्तिकारी आन्दोलन में नेतृत्व दे सके।

निश्चित तौर पर, यह एक जटिल और जोखिम भरा काम है, जैसा कि तमाम संशोधनवादी कम्युनिस्ट पार्टियों के हश्र को देखकर समझा जा सकता है। **'भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी' का यह मानना है कि भारत की कम्युनिस्ट पार्टी (सीपीआई) 1951 से, और भारत की कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) (सीपीएम) अपने जन्म यानी 1964 से ही संशोधनवादी पार्टियाँ हैं। संशोधनवादी पार्टियों के रूप में ये अपने नाम में 'कम्युनिस्ट' लगाती हैं, लेकिन वास्तव में छोटे पूँजीपति वर्ग, धनी और मँझोले किसानों, मँझोले और छोटे व्यापारियों और समूची मज़दूर आबादी के एक बेहद छोटे हिस्से, यानी कि बैंक-बीमा, पोस्टल-टेलीग्राफ़, रेलवे आदि के स्थायी कर्मचारियों के एक हिस्से की सेवा करती हैं, जिन्हें आप लेनिन की भाषा में कुलीन मज़दूर वर्ग कह सकते हैं। ये पूँजीवादी चुनावों, संसद और विधानसभाओं में मज़दूर वर्ग की ओर से रणकौशलात्मक (टैक्टिकल) हस्तक्षेप नहीं करतीं, बल्कि पूँजीपति वर्ग और निम्न पूँजीपति वर्ग की ओर से रणनीतिक (स्ट्रैटेजिक) हस्तक्षेप करती हैं।**

इसका क्या मतलब है? इसका अर्थ यह है कि ये पूँजीवादी चुनावों, संसद और विधानसभाओं में इस मक़सद से हस्तक्षेप नहीं करतीं कि आम मेहनतकश अवाम के समक्ष उसकी सीमाओं और उसकी वास्तविकता को उजागर कर सकें, बल्कि एक टटपुँजिया सुधारवादी पार्टी के रूप में रणनीतिक हस्तक्षेप करती हैं और पूँजीवादी चुनावों, संसद और विधानसभाओं में आम मेहनतकश जनता की आस्था को बढ़ावा देती हैं और इनके बारे में उनके विभ्रमों को बढ़ाती हैं। इनका लक्ष्य मज़दूर सत्ता की स्थापना और समाजवाद का निर्माण नहीं है, बल्कि ये एक सुधारवादी कल्याणकारी पूँजीवाद की स्थापना का शेखचिल्ली जैसा सपना पाले हुए हैं, जो कि अब सम्भव ही नहीं है। ऐसे पूँजीवादी राज्य की स्थापना के लिए पूँजीपति वर्ग के पास भारी मुनाफ़ा होना चाहिए, स्वस्थ अर्थव्यवस्था होनी चाहिए। लेकिन साम्राज्यवाद के आज के संकटग्रस्त दौर में यह सम्भव ही नहीं है। मुनाफ़े का संकट अपने चरम पर है। वित्तीय संकट 1970 के दशक से जाने का नाम ही नहीं ले रहा है। पूँजीपति वर्ग के मुनाफ़े की हवस ने ही पूँजीवाद को हमेशा की तरह संकट में धकेल दिया है, लेकिन 1970 के दौर से जारी इस संकट की ख़ासियत यह है कि चालीस वर्षों से यह संकट पूरी तरह कभी जा ही नहीं रहा है। इसीलिए इसे दीर्घकालिक मन्दी नाम दिया गया है और ऐसा लग रहा है कि यह मन्दी अब पूँजीवादी व्यवस्था के अन्त या किसी विनाशकारी महायुद्ध के साथ ही समाप्त होगी। ऐसे दौर में पूँजीपति वर्ग अपने घटते मुनाफ़े को बचाने के लिए मज़दूर वर्ग की मज़दूरी को घटाता है, उसके हक़ों को छीनता है, उसके आन्दोलनों को कुचलता है। वह कल्याणवाद और सुधारवाद कर ही नहीं सकता। उसे नवउदारवादी नीतियों की, निजीकरण और उदारीकरण की नीतियों की और भूमण्डलीकरण की नीतियों की आवश्यकता है। राजनीतिक तौर पर, उसे मोदी, ट्रम्प, दुतेर्ते, एर्दोआन, बोल्सोनारो जैसे फ़ासीवादियों या धुर दक्षिणपन्थियों की सत्ताओं की आवश्यकता है। कारण यह कि वह सुधारवाद करके यानी रोज़गार गारण्टी, सामाजिक सुरक्षा, आर्थिक सुरक्षा, खाद्य सुरक्षा आदि का हक़ मज़दूर वर्ग को नहीं दे सकता क्योंकि फिर मज़दूर वर्ग औनी-पौनी मज़दूरी पर काम करने को तैयार नहीं होगा और उसके मोलभाव की ताक़त बढ़ जायेगी। इस समय पूँजीपति वर्ग की ज़रूरत है कि मज़दूर वर्ग को बेरोज़गारी, भुखमरी, कुपोषण और बेघरी की हालत में रखा जाये ताकि वह कम-से-कम मज़दूरी में काम करने को तैयार हो और पूँजीपति वर्ग का मुनाफ़ा उसे क़ायम रखने लायक़ स्तरों पर बना रहे। यही कारण है कि माकपा, भाकपा जैसे मज़दूर वर्ग के ग़द्दारों के बौद्धिक "विशेषज्ञों" की लाख सलाह के बावजूद पूँजीपति वर्ग निजीकरण और उदारीकरण की नीतियों को ही आगे बढ़ा रहा है और इन नक़ली कम्युनिस्टों के नेहरूवादी कल्याणवाद के सपने को अपने जूते तले कुचल रहा है। ये मज़दूर वर्ग की ग़द्दार पार्टियाँ हैं, जिनसे अब मज़दूर वर्ग अपने क्रान्तिकारी लक्ष्य को पूरा

(पेज 8 पर जारी)

मज़दूरों-मेहनतकशों ने बनायी अपनी क्रान्तिकारी पार्टी!

(पेज 7 से आगे)

करने में नेतृत्व की उम्मीद नहीं कर सकता है और न ही पूँजीवादी चुनावों, संसद और विधानसभाओं में मज़दूर वर्ग के स्वतन्त्र राजनीतिक पक्ष के तौर पर रणकौशलात्मक हस्तक्षेप की उम्मीद कर सकता है।

राजनीतिक और विचारधारात्मक तौर पर यही हालत भारत की कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी-लेनिनवादी) –लिबरेशन की भी है। इस पार्टी ने अपनी शुरुआत एक "वामपन्थी" दुस्साहसवादी पार्टी के रूप में की थी लेकिन 1980 के दशक में नितान्त अवसरवादी पैंतरापलट करते हुए अपनी सभी पुरानी विचारधारात्मक अवस्थितियों (पोज़ीशन्स) को बदलकर यह संशोधनवाद के विपरीत ध्रुव तक जा पहुँची और संसदमार्गी जड़वामनों की पाँत में जाकर बैठ गयी। आज इसे संशोधनवादी कम्युनिस्ट पार्टियों में भी सर्वाधिक अवसरवादी और निकृष्ट कोटि की पार्टी कहा जा सकता है। ऐसी कई अन्य नामधारी कम्युनिस्ट या समाजवादी पार्टियाँ भी हैं जो कि अपने-अपने तरीक़े से संशोधनवाद और सुधारवाद के रास्ते पर चल रही हैं, जैसे कि सोशलिस्ट यूनिटी सेण्टर ऑफ़ इण्डिया (कम्युनिस्ट), रिवोल्यूशनरी सोशलिस्ट पार्टी, फ़ारवर्ड ब्लॉक आदि। इन सभी पर अलग से चर्चा की कोई आवश्यकता नहीं है। लेकिन संशोधनवाद और सुधारवाद की प्रवृत्ति पर संक्षेप में चर्चा इसलिए ज़रूरी थी क्योंकि ये पार्टियाँ भी कम्युनिस्ट होने का दावा करते हुए पूँजीवादी चुनावों, संसद और विधानसभा में हस्तक्षेप करती हैं लेकिन ये पूँजीवादी सुधारवाद की राजनीतिक अवस्थिति से रणनीतिक भागीदारी करती हैं, न कि मज़दूर वर्ग की क्रान्तिकारी अवस्थिति से रणकौशलात्मक हस्तक्षेप, जिसका लक्ष्य पूँजीवादी जनवादी व्यवस्था की सीमाओं और असलियत को उजागर करना होता है।

भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी का लक्ष्य है कि पूँजीवादी संसदवाद के दलदल में धँस चुकी तमाम संशोधनवादी पार्टियों को भी आम मेहनतकश आबादी के सामने बेनक़ाब किया जाये और उनके सुधारवाद और उनकी टटपुँजिया राजनीति की असलियत को उजागर किया जाये जिससे कि पूँजीवादी संसद में क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट टैक्टिकल हस्तक्षेप को सही अर्थों में स्थापित किया जा सके।

संक्षेप में, 'भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी' का गठन इसलिए किया गया है ताकि मज़दूर वर्ग की एक हिरावल पार्टी का निर्माण किया जा सके जो आम मेहनतकश जनता का नेतृत्वकारी कोर की भूमिका निभा सके। इसका अन्तिम लक्ष्य क्रान्तिकारी रास्ते से मज़दूर सत्ता की स्थापना और समाजवादी व्यवस्था का निर्माण है। इस दूरगामी राजनीतिक लक्ष्य की पूर्ति के लिए यह पार्टी मौजूद पूँजीवादी समाज में हर राजनीतिक प्रक्रिया और राजनीतिक क्षेत्र में मज़दूर वर्ग और आम मेहनतकश आबादी के स्वतन्त्र राजनीतिक पक्ष के रूप में हस्तक्षेप करेगी, चाहे वह ट्रेड यूनियन आन्दोलन हो, प्रगतिशील जनान्दोलन हों, जैसे कि बेरोज़गारी के विरुद्ध, महँगाई के विरुद्ध, भ्रष्टाचार के विरुद्ध, फ़ासीवाद के विरुद्ध या फिर जनवादी हक़ों पर हमले के विरुद्ध, या फिर, पूँजीवादी चुनाव, संसद, विधानसभाएँ, नगरपालिकाएँ या पंचायतें हों। **पूँजीवादी चुनावों, संसदों, विधानसभाओं आदि में हस्तक्षेप का मक़सद इन संस्थाओं की वास्तविकता और सीमाओं को आम मेहनतकश जनता के समक्ष उजागर करना है, न कि इन संस्थाओं के प्रति विभ्रम को बढ़ावा देना।** यानी 'भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी' का लक्ष्य है, इन पूँजीवादी चुनावों, संसद व विधानसभाओं में मज़दूर वर्ग के स्वतन्त्र राजनीतिक पक्ष के रूप में क्रान्तिकारी रणकौशलात्मक हस्तक्षेप करना।

भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी (RWPI) की ज़रूरत क्यों है?

भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी (RWPI) की ज़रूरत इसलिए है क्योंकि आज सभी मौजूद चुनावबाज़ पूँजीवादी पार्टियाँ पूँजीपति वर्ग के ही किसी न किसी हिस्से या ब्लॉक की नुमाइन्दगी करती हैं। चाहे वह बड़ा कॉरपोरेट पूँजीपति वर्ग हो जैसे कि अम्बानी, अडानी, टाटा, बिड़ला, मित्तल, बजाज आदि, चाहे वह मँझोला पूँजीपति वर्ग हो जैसे कि गोदरेज, निरमा, आदि, या वह छोटा पूँजीपति वर्ग हो जैसे कि छोटे कारख़ाना मालिक, ठेकेदार, छोटे व मँझोले व्यापारी, दलाल, धनी व उच्च मध्यम किसान व भूस्वामी, काफ़ी ऊँची तनख़्वाहें पाने वाले नौकरशाह वर्ग, शहरी उच्च मध्यम वर्ग, आदि। आइए ज़रा देखते हैं कि कुछ प्रमुख पूँजीवादी व टटपुँजिया चुनावबाज़ पार्टियाँ किन वर्गों की नुमाइन्दगी करती हैं।

कोई पार्टी किस वर्ग या किन वर्गों की नुमाइन्दगी करती है इसका फ़ैसला किन बातों से होता है? इसका फ़ैसला दो बातों से होता है : पहला, इस पार्टी के राजनीतिक नेतृत्व का राजनीतिक वर्ग चरित्र और विचारधारा क्या है; दूसरा, इस पार्टी के संसाधनों यानी चुनावी चन्दों, योगदानों आदि के स्रोत क्या हैं। आइए इन दो पैमानों पर भाजपा, कांग्रेस, सपा, बसपा, आम आदमी पार्टी, माकपा जैसी प्रमुख राष्ट्रीय व क्षेत्रीय पार्टियों की परख करें। इससे यह स्पष्ट हो जायेगा कि ये किन वर्गों की नुमाइन्दगी करती हैं।

सबसे पहले तो हम यह देख लेते हैं कि आज समस्त सांसदों का 82 प्रतिशत करोड़पति हैं। यानी एक बात तो स्पष्ट है कि आज न सिर्फ़ सभी चुनावी पार्टियाँ पूँजीपति वर्ग के किसी न किसी हिस्से की नुमाइन्दगी करती हैं, बल्कि स्वयं उनका नेतृत्व इन्हीं वर्गों से आता है जो कि सक्रिय मुनाफ़ाखोर और पूँजीपति हैं। सांसदों में कारख़ाना मालिक, चीनी मिल मालिक, ठेका कम्पनियों के मालिक, बड़े भूस्वामी भरे हुए हैं। जो पेशेवर नेता हैं, अगर उनकी राजनीतिक विचारधारा का अध्ययन किया जाये तो कांग्रेस और भाजपा के नेता उन्नीस-बीस के फ़र्क़ से नवउदारवादी नीतियों के ही समर्थक हैं और इस रूप में देश के मेहनत और कुदरत को लूट-खसोट के लिए पूँजीपति वर्ग को सौंप देने के हिमायती हैं। अगर क्षेत्रीय दलों जैसे कि सपा, राजद, जद (यू), तेदेपा, द्रमुक, अकाली, तृणमूल आदि की बात करें तो ये भी अपने-अपने राज्य के बड़े और मँझोले पूँजीपतियों, बिल्डरों, ठेकेदारों के वर्ग हितों की सेवा करते हैं और उनकी आर्थिक नीतियाँ और राजनीतिक विचारधारा इसी के अनुसार तय होती हैं। माकपा, भाकपा और भाकपा (माले) लिबरेशन जैसी पार्टियों की बात करें तो इनके सांसद या विधायक सीधे पूँजीपति वर्ग से नहीं आते हैं, बल्कि उनका राजनीतिक वर्ग चरित्र टटपुँजिया वर्गों का है। इनकी आर्थिक नीतियाँ भी छोटे मालिक, छोटे व्यापारी वर्ग, धनी और मँझोले किसान और संगठित स्थायी कर्मचारी वर्ग के हितों की ही सेवा करती हैं। हालाँकि, दिलचस्प बात यह है कि जब भी माकपा व भाकपा का गठबन्धन सत्ता में होता है, जैसे कि पश्चिम बंगाल में था और केरल में है, तो वह बड़े पूँजीपतियों की भी बड़े चाव से सेवा करता है जैसे कि बुद्धदेव भट्टाचार्य की सरकार ने पश्चिम बंगाल में टाटा के नैनो संयन्त्र के लिए किया था या केरल में पिनरायी विजयन की सरकार एम.ए. यूसुफ़ अली के लिए कर रही है। इससे यह साफ़ होता है कि टटपुँजिया वर्ग की कोई अपनी विचारधारा नहीं होती और वह अन्ततः पूँजीवादी विचारधारा पर ही चलता है। आम आदमी पार्टी की बात करें तो वह सबसे स्पष्ट तौर पर छोटे मालिकों और व्यापारियों की पार्टी के रूप में सामने आयी है। न सिर्फ़ उसकी राजनीतिक विचारधारा छोटे मालिकों और व्यापारियों की सेवा करती है, बल्कि स्वयं इस पार्टी के नेतृत्व में तमाम छोटे कारख़ाना मालिक व व्यापारी शामिल हैं जैसे कि विकास गोयल, गिरीश सोनी, राजेश गुप्ता आदि। इसके अलावा, अन्य टटपुँजिया आर्थिक पेशों से आने वाले लोग आम आदमी पार्टी के नेतृत्व और सदस्यों में भारी मात्रा में हैं जैसे कि प्रापर्टी डीलर, ट्रांसपोर्टर, शेयर दलाल, बिचौलिये, इत्यादि। इस पार्टी की नीतियों ने भी पिछले पाँच वर्षों में दिल्ली में इन्हीं वर्गों की सेवा की है, हालाँकि यह एक ऐसी पार्टी है जिसने सभी वर्गों से सभी वायदे कर दिये थे! इसका दावा था कि जो बड़े पूँजीपति "ईमानदारी" से काम करते हैं (मानो ईमान नापने की कोई मशीन केजरीवाल के पास हो!) उन्हें धन्धे की पूर्ण स्वतन्त्रता दी जायेगी, छोटे और मँझोले मालिकों और व्यापारियों पर कर विभाग आदि के छापे रुकवा दिये जायेंगे और धन्धा करना आसान बना दिया जायेगा (यानी श्रम क़ानूनों से पैदा होने वाली रुकावट ख़त्म कर दी जायेगी); लेकिन साथ ही इस पार्टी ने मज़दूरों से भी लुभावने वायदे किये जैसे कि ठेका प्रथा को ख़त्म करने, श्रम क़ानूनों को लागू करने आदि के वायदे। इसने टटपुँजिया वर्गों यानी छोटे मालिक वर्ग व व्यापारी वर्ग, बड़े पूँजीपति वर्ग से किये सारे वायदे तो पूरे किये लेकिन मज़दूर वर्ग से किये सारे वायदों से यह पार्टी मुकर गयी। यह लाज़िमी भी था। जो पार्टी स्वयं छोटे पूँजीपतियों ने बनायी हो, वह मज़दूरों को श्रम क़ानून के अधिकार और ठेका प्रथा से मुक्ति कैसे दे सकती थी। ये वायदे तो सिर्फ़ मज़दूरों और आम मेहनतकशों के वोटों के लिए किये गये थे और आम मेहनतकश आबादी ने बड़े चाव से आम आदमी पार्टी को वोट भी दिया क्योंकि वह नयी पार्टी थी और लोग भाजपा व कांग्रेस से तंग आ चुके थे। लेकिन अब वे आम आदमी पार्टी से भी तंग आ चुके हैं। यदि तमाम क्षेत्रीय दलों की बात करें तो उनका नेतृत्व भी इन्हीं राजनीतिक वर्गों से आता है। अब आते हैं कुछ प्रमुख चुनावबाज़ पूँजीवादी दलों के आर्थिक संसाधन के स्रोतों पर। यह सबसे भरोसेमन्द पैमाना है जो कि आपको इन पार्टियों की वास्तविक वर्ग चरित्र के बारे में बताता है। सबसे पहले सबसे बड़ी और फ़ासीवादी और सबसे ज़्यादा मज़दूर-विरोधी, दलित-विरोधी, स्त्री-विरोधी, आदिवासी-विरोधी और धार्मिक अल्पसंख्यक विरोधी पार्टी, भारतीय जनता पार्टी की बात करते हैं।

भाजपा को 2017 में कुल 1034.27 करोड़ रुपये का फ़ण्ड मिला। यह केवल ज्ञात चन्दा है, जो कि कुल चन्दे का बहुत छोटा हिस्सा है। इसका सबसे बड़ा हिस्सा प्रूडेण्ट इलेक्टोरल ट्रस्ट के पास से आया, जिसका पुराना नाम सत्या इलेक्टोरल ट्रस्ट था। इसे 2014 के चुनाव के ठीक पहले एयरटेल के मालिक ने बनाया था और इसने दर्जनों बड़ी कम्पनियों से फ़ण्ड एकत्र करके भाजपा को दिया। इन कम्पनियों में डीएलएफ़, टॉरेण्ट पावर, एस्सार, हीरो, आदित्य बिड़ला ग्रुप, आदि शामिल हैं। इसने अपने कुल फ़ण्ड का 90 प्रतिशत से भी ज़्यादा बड़ा हिस्सा भाजपा को दिया। बचे हुए हिस्से से कांग्रेस, आम आदमी पार्टी, शिरोमणि अकाली दल, समाजवादी पार्टी व राष्ट्रीय लोकदल को चुनावी चन्दा दिया गया। इसके अलावा, एबी इलेक्टोरल ट्रस्ट ने भी भाजपा को जमकर फ़ण्ड दिये हैं, जो कि आदित्य बिड़ला ग्रुप का है। इसके अलावा भाजपा को बड़े चन्दे देने वाली पूँजीपतियों में कैडिला हेल्थकेयर, माइक्रो लैब्स, सिपला लिमिटेड, महावीर इलेक्ट्रिकल्स आदि शामिल हैं। भाजपा के चन्दे का 95 प्रतिशत से भी ज़्यादा हिस्सा पूँजीपति घरानों और बड़ी-बड़ी कम्पनियों से आया है।

कांग्रेस को भाजपा से कहीं कम फ़ण्ड मिले, यानी लगभग 200 करोड़ रुपये। लेकिन इस फ़ण्ड का स्रोत भी अधिकांशतः पूँजीपति घरानों से ही आया है। इस समय पूँजीपति घरानों ने भाजपा को ज़्यादा फ़ण्ड इसलिए दिया है क्योंकि मोदी सरकार ने इन पूँजीपति घरानों को लूट-खसोट की जैसी छूट दी है, वह अभूतपूर्व है और साथ ही जनता के आन्दोलनों को जिस बर्बरता से कुचलने का प्रयास किया है वह भी अभूतपूर्व है। यही कारण है कि कांग्रेस को भाजपा की तुलना में पाँच गुना कम फ़ण्ड मिले हैं, जिसका रोना कांग्रेस रो रही है। लेकिन कांग्रेस को जो फ़ण्ड मिले हैं उनका अधिकांश भी बड़ी-बड़ी कम्पनियों और उनके चुनावी ट्रस्टों से आया है। कांग्रेस को फ़ण्ड देने वालों में प्रूडेण्ट (सत्या) इलेक्टोरल ट्रस्ट, ट्रायम्फ़ इलेक्टोरल ट्रस्ट, निरमा लिमिटेड, आदित्य बिड़ला इलेक्टोरल ट्रस्ट, ज़ाइडस हेल्थकेयर, गायत्री प्रोजेक्ट्स आदि प्रमुख हैं। कांग्रेस के फ़ण्ड का भी 90-95 प्रतिशत हिस्सा बड़े पूँजीपतियों से आया है।

आम आदमी पार्टी को 2016-17 में कुल लगभग 25 करोड़ रुपये फ़ण्ड प्राप्त हुए। इसमें सबसे बड़ा हिस्सा उसी सत्या या प्रूडेण्ट इलेक्टोरल ट्रस्ट का है, जिसकी हम ऊपर चर्चा कर चुके हैं। इसके अलावा टीडीआई इन्फ्राटेक, आईबीसी नॉलेज पार्क, अलेग्रो कारपोरेट फाइनेंस, पार कम्प्यूटर साइंस इण्टरनेशनल, इण्डियन फ्रेटवेज़, रालसन इण्डिया लिमिटेड और बहुत से मँझोले और छोटे उद्यमियों ने आम आदमी पार्टी को करोड़ों और लाखों में फ़ण्ड दिये हैं, जैसे कि सोनम सर्राफ़, वकील हाउसिंग डेवलपमेण्ट कारपोरेशन, इण्डियन डिज़ाइन्स एक्सपोर्ट, आदि।

भारत की कम्युनिस्ट पार्टी को कुल क़रीब 1 करोड़ 15 लाख रुपये फ़ण्ड मिले। इसके बड़ा हिस्सा पार्टी के विभिन्न राज्यों की राजकीय परिषदों से आया, जिनमें सहयोग करने वाले अधिकांश लोग छोटे उद्यमी हैं, जो कि अक्सर इस पार्टी के पदों पर भी विराजमान हैं। इसके अलावा, तमाम अल्पसंख्यक उद्यमियों के संगठनों ने भाकपा को चन्दा दिया है। लेकिन अधिकांशतः ये चन्दे निम्न पूँजीपति वर्ग, छोटे उद्यमियों, व्यापारियों और साम्प्रदायिक फ़ासीवाद के उभार से डरे हुए सेक्युलर व जनवादी शहरी मध्यवर्ग और उच्च मध्यवर्ग ने दिये हैं। इनके फ़ण्ड का एक हिस्सा निश्चित तौर पर इनकी ट्रेड यूनियन एटक के नेटवर्क से भी आता है, जिनकी बैंक व बीमा

(पेज 9 पर जारी)

लोकसभा चुनावों में सात सीटों पर चुनाव लड़ेंगे 'भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी (RWPI)' के मज़दूरपक्षीय उम्मीदवार !

(पेज 8 से आगे)
कर्मचारियों, पोस्टल व टेलीग्राफ़ कर्मचारियों आदि में ठीकठाक पकड़ है। यह मज़दूर वर्ग का वह हिस्सा है जिसे हम एक वर्ग के तौर पर कुलीन मज़दूर वर्ग की संज्ञा दे सकते हैं।

भारत की कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) को 2017-18 में क़रीब 2 करोड़ 76 लाख रुपये का चुनावी चन्दा मिला। इसमें पार्टी के नेताओं द्वारा दिये गये फ़ण्ड के अलावा, जो कि स्वयं खाते-पीते मध्यवर्ग, छोटे उद्यमियों, छोटे व्यापारियों, कुलीन मध्यवर्ग से चन्दे के रूप में आता है, तमाम छोटी कम्पनियों द्वारा दिया गया फ़ण्ड है जैसे कि सेमती टेक्सटाइल, ब्रिलियण्ट स्टडी सेण्टर, ईकेके कंस्ट्रक्शन, वेल्लाप्पली ब्रदर्स, जॉस्को ज्युलर्स, एसेट्स होम्स, कोसामट्टम फाइनेंस, जेजे हॉलीडे, होटल एक्सकैलीबर, एसबीबी एण्ड क्ले प्रोडक्ट्स, श्री बालाजी रेज़ीडेंसी, बालाजी इंजीनियरिंग सर्विसेज़ आदि शामिल हैं। इनकी यूनियन सीटू ने भी अपने बैंक व बीमा कर्मचारियों, पोस्टल व टेलीग्राफ़ कर्मचारियों आदि से जुटाया गया चन्दा इन्हें दिया है।

बहुजन समाज पार्टी ने पिछले कई वर्षों से ऐलान किया हुआ है कि वह किसी से भी 20,000 रुपये से अधिक चन्दा नहीं लेती। लेकिन मौजूदा साल में उसे कुल 52 करोड़ रुपये के क़रीब चन्दा मिला है। इसका बड़ा हिस्सा दलित नौकरशाहों, अफ़सरों, दलित व अन्य पिछड़ी जातियों के छोटे उद्यमियों, बिल्डरों, व्यापारियों, व्यवसायियों आदि से आया है। ये दाता कौन हैं यह पता नहीं चलता है क्योंकि पार्टियों के लिए 20,000 रुपये या उससे कम दान देने वालों का नाम उजागर करना अनिवार्य नहीं है। लेकिन बसपा का प्रमुख दाता वर्ग उपरोक्त ही हैं।

समाजवादी पार्टी को लगभग 7 करोड़ रुपये का चन्दा वर्ष 2017-18 में प्राप्त हुआ है। चन्दा देने वालों में सत्या इलेक्टोरल ट्रस्ट (एयरटेल व अन्य), जनरल इलेक्टोरल ट्रस्ट (बिड़ला), प्रोग्रेसिव इलेक्टोरल ट्रस्ट (टाटा), आईटीसी लिमिटेड के साथ-साथ तमाम छोटे पूँजीपतियों, धनी कुलकों-फार्मरों, ने चन्दा दिया है। इसके दाताओं की पूरी सूची देखें तो साफ़ हो जाता है कि यह पार्टी भी बड़े पूँजीपतियों की एक लॉबी के साथ-साथ छोटे पूँजीपतियों, व्यापारियों, धनी फ़ार्मरों, ठेकेदार कम्पनियों, छोटे व मँझोले धार्मिक अल्पसंख्यक उद्यमियों आदि की ही नुमाइन्दगी करती है।

कुछ बड़ी कम्पनियों के चुनावी ट्रस्ट सभी बड़ी राष्ट्रीय व क्षेत्रीय पार्टियों को भारी-भरकम चन्दा देते हैं। कहने की ज़रूरत नहीं कि इन घोषित चन्दों के अलावा बहुत भारी रक़म और हवाई जहाज़, हेलिकॉप्टर, गाड़ियाँ, मकान, होटल आदि पूँजीपतियों द्वारा अघोषित रूप से भी पार्टियों को मुहैया कराये जाते हैं। इसी के बूते ये पार्टियाँ चुनाव लड़ती हैं। दूसरा स्रोत होता है स्वयं उम्मीदवारों की धन-सम्पदा।

अन्य चुनावबाज़ पूँजीवादी पार्टियों के फ़ण्ड में रुचि रखने वाले पाठक 'एसोसियेशन फ़ॉर डेमोक्रैटिक रिफ़ॉर्म्स' की रिपोर्टों को देख सकते हैं जो कि इण्टरनेट पर उपलब्ध हैं। हम इन सारी पार्टियों का ब्यौरा यहाँ नहीं दे सकते क्योंकि उसके लिए पूरी किताब की आवश्यकता पड़ेगी। लेकिन अब **सौ टके का सवाल : क्या ये चुनावबाज़ पूँजीवादी पार्टियाँ चुनावों समेत किसी भी राजनीतिक प्रक्रिया, मंच या क्षेत्र में आम मेहनतकश वर्गों के वर्ग हितों की नुमाइन्दगी या सेवा कर सकती हैं? जिन पार्टियों के समस्त आर्थिक संसाधनों के स्रोत का कम-से-कम 90 प्रतिशत पूँजीपति वर्ग या निम्न पूँजीपति वर्ग से आता हो, वह भला क्यों मज़दूर वर्ग और आम मेहनतकश आबादी के वर्ग हितों की सेवा करने लगीं?** ज़ाहिर सी बात है कि जो जिसका खाता है, उसी का गाता है। ऐसे में, इन पूँजीवादी चुनावबाज़ पार्टियों से यह उम्मीद रखना कि वे हम आम मेहनतकशों और मज़दूरों के हक़ों और हितों की सेवा कर सकती हैं, निपट मूर्खता होगी।

इस मायने में 'भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी' (RWPI) सिद्धान्त और व्यवहार के मामले में एक अलग अवस्थिति पर खड़ी है। कैसे? आइए उन्हीं दो पैमानों पर RWPI के राजनीतिक वर्ग चरित्र का मूल्यांकन करते हैं, जिन पर हमने पूँजीवादी चुनावबाज़ पार्टियों का किया है। यानी, नेतृत्व का राजनीतिक वर्ग चरित्र और उसके संसाधनों के स्रोत। RWPI का राजनीतिक नेतृत्व मज़दूर आन्दोलनों से पैदा हुआ है। दिल्ली, पंजाब, उत्तर प्रदेश, हरियाणा, बिहार, राजस्थान, उत्तराखण्ड के अनेक मज़दूर आन्दोलनों, क्रान्तिकारी छात्र-युवा आन्दोलनों, व अन्य प्रगतिशील जनान्दोलनों में परिपक्व हुए राजनीतिक व मज़दूर संगठनकर्ताओं की कोर टीम से 'भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी' के नेतृत्व का निर्माण हुआ है।

'भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी' का यह उसूल है वह किसी भी तरीक़े से पूँजीपति वर्ग के किसी भी हिस्से से कोई भी संस्थागत अनुदान, चन्दा या योगदान नहीं लेगी। RWPI किसी भी देशी-विदेशी पूँजीवादी कम्पनी, उनके चुनावी ट्रस्टों, उनकी फ़ण्डिंग एजेंसियों आदि से कोई आर्थिक सहायता नहीं लेगी। दूसरे शब्दों में, RWPI पूरी तरह से मज़दूरों, मेहनतकशों और प्रगतिशील व्यक्तियों के बीच से ही अपने संसाधनों को जुटायेगी और उसी के आधार पर अपनी सभी गतिविधियों को अंजाम देगी। केवल एक ऐसी पार्टी ही मज़दूर वर्ग और आम मेहनतकश आबादी के हितों की सेवा कर सकती है, उनका प्रतिनिधित्व कर सकती है और उनसे सीखकर उन्हें नेतृत्व दे सकती है। इस रूप में, RWPI सच्चे मायने में मज़दूर वर्ग की हिरावल पार्टी है और समूची मेहनतकश जनता का नेतृत्वकारी कोर बनने की क्षमता रखती है। RWPI सामूहिक नेतृत्व और जनवादी केन्द्रीयता के उसूलों को मानती है। इसका अर्थ यह है कि नेतृत्व व्यक्ति आधारित नहीं, बल्कि एक चुने हुए निकाय द्वारा दिया जायेगा और फ़ैसला लिये जाने से पहले बहस-मुबाहिसे और चर्चा की पूर्ण स्वतन्त्रता और बहुसंख्या द्वारा फ़ैसला लिये जाने के बाद पूर्ण अनुशासन। केवल ऐसी पार्टी ही मेहनतकश वर्गों के राजनीतिक लक्ष्यों को पूरा करने और उनके लिए लड़ने की क्षमता रख सकती है। अन्यथा पार्टी टटपुँजिया भटकावों और विचलनों का शिकार होने को बाध्य होगी।

जो भी मज़दूर, आम मेहनतकश, छात्र, स्त्रियाँ व अन्य इंसाफ़पसन्द व तरक़्क़ीपसन्द नागरिक भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी के कार्यक्रम से सहमत हैं, वे उसके वॉलण्टियर बन सकते हैं। लेकिन सदस्यता ग्रहण करने के लिए मार्क्सवाद-लेनिनवाद के उसूलों और विश्व दृष्टिकोण को स्वीकार करना अनिवार्य होगा। वॉलण्टियर पार्टी के कार्यक्रम के प्रचार-प्रसार और उसके चुनावी प्रचार-प्रसार में पूरी तरह से हिस्सा लेंगे। लेकिन पार्टी के सम्मेलनों आदि में वे ही लोग भाग ले सकते हैं जो कि न सिर्फ़ पार्टी के कार्यक्रम को स्वीकार करें, बल्कि पार्टी के सर्वहारा विश्व-दृष्टिकोण यानी द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद को भी स्वीकार करें।

यहाँ से हम इस चर्चा पर आ सकते हैं कि मौजूदा लोकसभा चुनावों में भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी किस कार्यक्रम या किस चुनाव घोषणापत्र के साथ मज़दूर वर्ग के स्वतन्त्र राजनीतिक पक्ष की ओर से हस्तक्षेप करने वाली है।

भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी (RWPI) का चुनाव घोषणापत्र क्या कहता है?

RWPI का चुनाव घोषणापत्र पहले ही यह स्पष्ट करता है कि ग़रीबी, बेरोज़गारी, महँगाई, बेघरी, भुखमरी, शोषण और उत्पीड़न का अन्तिम तौर पर ख़ात्मा तभी हो सकता है, जबकि क्रान्तिकारी रास्ते से मज़दूर वर्ग की हिरावल पार्टी के नेतृत्व में मज़दूर सत्ता की स्थापना हो और समाजवादी व्यवस्था का निर्माण किया जाये। इस क्रान्तिकारी परिवर्तन के लिए ज़रूरी है कि पूरे देश में मज़दूर वर्ग की क्रान्तिकारी हिरावल पार्टी खड़ी की जाये। इसी लक्ष्य के साथ RWPI का गठन किया गया है कि वह इस ज़िम्मेदारी को निभा सके और समूची मेहनतकश आबादी के नेतृत्वकारी कोर की भूमिका निभा कर सके।

साथ ही ऐसा क्रान्तिकारी परिवर्तन कोई क्रान्तिकारी पार्टी अपनी मन मर्ज़ी से नहीं कर सकती बल्कि ऐसा क्रान्तिकारी परिवर्तन कई वस्तुगत अन्तरविरोधों पर भी निर्भर करता है। जब तक कि पूँजीवादी व्यवस्था का आर्थिक संकट और तमाम राजनीतिक अन्तरविरोध मिलकर एक सन्धिबिन्दु का निर्माण नहीं करते, यानी कि जब तक वे मिलकर समूची पूँजीवादी सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था के एक आम राजनीतिक संकट में तब्दील नहीं होते तब तक क्रान्ति के लिए पूरी तरह तैयार सर्वहारा वर्ग और उसका पूरी तरह तैयार हिरावल भी क्रान्तिकारी परिवर्तन को अंजाम नहीं दे सकते हैं। निश्चित तौर पर, पूँजीवादी व्यवस्था चक्रीय क्रम में ऐसे राजनीतिक संकटों का शिकार होती है, जैसे कि 2011 में मिस्र और ट्यूनीशिया में हुआ था। लेकिन यदि उस समय सर्वहारा वर्ग और आम मेहनतकश आबादी को राजनीतिक रूप से तैयार करने और नेतृत्व देने के लिए कोई क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट पार्टी मौजूद नहीं है, तो यह आम राजनीतिक संकट का दौर बीत जाता है और जनता को किसी न किसी प्रकार की धुर दक्षिणपन्थी या फ़ासीवादी प्रतिक्रिया के रूप में दण्ड मिलता है, जैसा कि मिस्र में हुआ भी। यानी कि क्रान्तिकारी परिवर्तन सर्वहारा वर्ग और उसके हिरावल की राजनीतिक तैयारी और वस्तुगत राजनीतिक परिस्थिति के भी पूर्ण रूप से पकने, यानी मनोगत और वस्तुगत दोनों ही कारकों के तैयार होने के सन्धिबिन्दु पर निर्भर करता है।

लेकिन वस्तुगत परिस्थितियाँ अपने आप ही तैयार नहीं होतीं बल्कि उसमें क्रान्तिकारी मनोगत शक्तियों का हस्तक्षेप भी आवश्यक होता है। यही वस्तुगत और मनोगत का द्वन्द्व भी है। यानी कि क्रान्तिकारी पार्टी के सतत् राजनीतिक हस्तक्षेप के बिना न तो पूँजीवाद का राजनीतिक संकट स्वत:स्फूर्त गति से पूरी तरह परिपक्व हो सकता है और न ही पूँजीवादी व्यवस्था के आर्थिक संकट के बिना क्रान्तिकारी वर्ग और उसकी हिरावल पार्टी राजनीतिक हस्तक्षेप के लिए पूरी तरह तैयार हो सकती है। इस सूत्रीकरण से निकलने वाला ठोस राजनीतिक नतीजा क्या है? इसका ठोस राजनीतिक नतीजा यह है कि राजनीतिक रूप से ग़ैर-क्रान्तिकारी दौरों में भी सर्वहारा वर्ग की हिरावल पार्टी को सतत् राजनीतिक सक्रियता के ज़रिये मेहनतकश वर्गों से सीखना होता है, यानी उनमें व्याप्त सही विचारों को अपनाना होता है और उन्हें माँजना होता है और इसके आधार पर राजनीतिक कार्यदिशा सूत्रबद्ध करनी होती है और उसके आधार पर समूची मेहनतकश आबादी को राजनीतिक नेतृत्व देना होता है। यह कैसे हो सकता है? **यह तभी हो सकता है जबकि सर्वहारा वर्ग की हिरावल पार्टी वर्तमान समय की सभी राजनीतिक प्रक्रियाओं, मंचों, क्षेत्रों और गतिविधियों के प्रवाह से कटी न रहे, बल्कि उसमें सक्रिय राजनीतिक हस्तक्षेप करे।** लेकिन यह कोई भी राजनीतिक हस्तक्षेप नहीं होता बल्कि सर्वहारा वर्ग के स्वतन्त्र राजनीतिक पक्ष की ओर से किया गया हस्तक्षेप होता है, यानी कि यह सर्वहारा वर्ग और अन्य मेहनतकश वर्गों के हितों को राजनीतिक रूप से तमाम पूँजीवादी चुनावबाज़ पार्टियों से विलग कर देता है। सामाजिक-आर्थिक रूप से इन मेहनतकश वर्गों के हित पहले से ही अलग होते हैं। लेकिन जब तक ये मेहनतकश वर्ग स्वयं इस बात को समझते नहीं और अपने आप को स्वतन्त्र राजनीतिक रूप से संगठित नहीं करते, तब तक राजनीतिक तौर पर उनके वर्ग हितों का पूँजीवादी और निम्न-पूँजीवादी वर्ग से विलगाव नहीं हुआ होता है। यही वजह है कि सर्वहारा वर्ग के क्रान्तिकारी हिरावल को पूँजीवादी समाज के रोज़मर्रा के राजनीतिक जीवन के हर पहलू पर पोज़ीशन लेना और उसमें हस्तक्षेप करना सर्वहारा वर्ग को सिखाना होता है। इसके बिना न तो सर्वहारा वर्ग और न ही आम मेहनतकश आबादी क्रान्तिकारी परिवर्तन के लिए तैयार होती है।

कहने की आवश्यकता नहीं है कि पूँजीवादी चुनाव पूँजीवादी समाज में जारी समस्त राजनीतिक प्रक्रियाओं में यदि सबसे महत्वपूर्ण नहीं तो एक बेहद महत्वपूर्ण राजनीतिक प्रक्रिया है। ऐसे में यह लाज़िमी है कि सर्वहारा वर्ग की हिरावल पार्टी को संगठित किया जाये और इस प्रक्रिया में भी सर्वहारा वर्ग की स्वतन्त्र राजनीतिक अवस्थिति से हस्तक्षेप किया जाये। यह हस्तक्षेप टैक्टिकल हस्तक्षेप होता है, जिससे कि समूचे क्रान्तिकारी परिवर्तन की परियोजना को आगे बढ़ाया जा सके। इसके बारे में हम ऊपर चर्चा कर चुके हैं। निश्चित तौर पर, चुनाव में रणकौशलात्मक हस्तक्षेप करने वाली क्रान्तिकारी पार्टी को भी चुनाव में एक एजेण्डा पेश करना होता है जिसके बिना वह जनता के बीच अपने राजनीतिक कार्यक्रम को लोकप्रिय नहीं बना सकती है। इस एजेण्डा में पार्टी कौन-सी माँगों या कार्यभारों को रखती है? वे माँग और कार्यभार जो कि समूचे समाजवादी क्रान्ति के कार्यक्रम से जाकर जुड़ते हैं और उसे ही आगे बढ़ाते हैं। **'मज़दूर बिगुल' ने RWPI के चुनाव घोषणापत्र का अध्ययन करके पाया कि यह**

(पेज 10 पर जारी)

मज़दूरों-मेहनतकशों ने बनायी अपनी क्रान्तिकारी पार्टी!

(पेज 9 से आगे)

घोषणापत्र लगभग उन सभी मौजूदा माँगों या कार्यभारों को समेटता है, जो सीधे-सीधे समाजवाद के लिए संघर्ष से जाकर जुड़ते हैं। आइए देखते हैं कि यह एजेण्डा और उसकी कुछ प्रमुख माँगें या कार्यभार क्या हैं, जिन्हें लेकर RWPI के मज़दूर वर्गीय उम्मीदवार आने वाले लोकसभा चुनावों में हस्तक्षेप कर रहे हैं।

पहली आम माँग जो कि RWPI का घोषणापत्र उठाता है, वह है सभी अप्रत्यक्ष करों को समाप्त करना और समूचे पूँजीपति वर्ग पर प्रगतिशील कर की व्यवस्था को लागू करना। हम मज़दूरों और मेहनतकशों को इस माँग का महत्व समझना चाहिए। पिछले बजट में सरकार ने यह बताया था कि सरकार की कुल आमदनी 2.7 लाख करोड़ रुपये है। यह वास्तव में देश में वस्तुओं और सेवाओं की कुल पैदावार का मूल्य है। ज़ाहिर है कि ये सारी वस्तुएँ और सेवाएँ टाटा, बिड़ला, अम्बानी, अडानी, जिन्दल और मित्तल, तमाम कारख़ाना मालिक, ठेकेदार, दलाल और बिचौलिये नहीं बना रहे हैं, बल्कि आम मेहनतकश आबादी अपनी मेहनत से बनाती है। यदि कोई पूँजीपति कहता है कि कारख़ाना और मशीनें तो उसकी हैं, तो वह कारख़ाना और मशीनें भी उसने बनायी नहीं बल्कि उसे ख़रीदा है। जिससे ख़रीदा है, वह भी पूँजीपति है, लेकिन उसने भी मशीनें और उत्पादन के साधन नहीं बनाये। अन्ततः, सुई से लेकर जहाज़ तक सबकुछ मज़दूर वर्ग ही बनाता है। रुपये का नोट अपने आप में काग़ज़ का टुकड़ा मात्र है यदि उससे ख़रीदने के लिए कुछ मौजूद ही न हो। आप उसे खा या पहन नहीं सकते और न ही उसमें रह सकते हैं। ज़ाहिर है, कि शोषण की व्यवस्था का ढाँचा ऐसा है कि समस्त मूल्य यानी कि बेची और ख़रीदी जाने वाली हर वस्तु, यानी माल का उत्पादन मज़दूर वर्ग करता है लेकिन उसके बदले में उसे इस समस्त मूल्य पर अधिकार नहीं मिलता, बल्कि मज़दूरी के रूप में सिर्फ़ जीने की ख़ुराकु मिलती है। 1973 में कुल उत्पादन में मज़दूरी का हिस्सा 30 प्रतिशत के क़रीब था जो कि आज घटकर 11 प्रतिशत के क़रीब पहुँच चुका है। यानी मज़दूर जो कुछ पैदा करता है, उसका केवल 11 प्रतिशत उसे मिलता है ताकि वह ज़िन्दा रह सके और पूँजीपति के लिए मुनाफ़े का उत्पादन जारी रख सके। ऐसे में, जब कि सबकुछ मज़दूर ही पैदा कर रहा है, उससे अप्रत्यक्ष कर के रूप में सरकारी ख़ज़ाने का बड़ा हिस्सा वसूलना क्या न्यायपूर्ण है? वैसे तो समूची पूँजीवादी व्यवस्था और उसका शोषणकारी चरित्र ही अन्यायपूर्ण है, लेकिन आम जनवादी सिद्धान्तों के अनुसार भी, अप्रत्यक्ष कर के रूप में आम मेहनतकश जनता की कमाई पर डाका डालना अनुचित और अनैतिक है। कुल सरकारी ख़ज़ाने का मात्र 28 प्रतिशत कॉरपोरेट कर से आता है। अन्य लगभग 20 प्रतिशत आयकर से आता है, जिसका एक हिस्सा निम्न व मध्यम मध्य वर्ग देता है। बाकी अप्रत्यक्ष करों से एकत्र होता है। जनता से यह अतिरिक्त अप्रत्यक्ष कर लिया जाना एक प्रकार का डाका है, क्योंकि यह मेहनतकश जनता पहले ही सबकुछ पैदा करती है, जिसमें कि समूचे पूँजीपति वर्ग की आमदनी भी है। इसलिए अप्रत्यक्ष कर को तत्काल समाप्त किये जाने की माँग एक जन माँग है, जोकि आम मेहनतकश जनता के लिए महँगाई को कम करेगी और उसके जीवन को आसान बनायेगी। सरकारी ख़ज़ाने को बढ़ाने, ताकि कम-से-कम सैद्धान्तिक तौर पर जनकल्याण के कार्यों में उसे लगाया जा सके, के लिए सरकार को पूँजीपति और धनाढ्य वर्ग पर प्रगतिशील कर लगाना चाहिए, यानी कि जैसे-जैसे आय और सम्पत्ति बढ़ेगी वैसे-वैसे कर भी बढ़ते जायेंगे। आज कॉरपोरेट पूँजीपति वर्ग के लिए कहने को टैक्स की दर 30 प्रतिशत है, लेकिन कोई भी 10-12 प्रतिशत से अधिक नहीं देता, मिसाल के तौर पर, अम्बानी 10 प्रतिशत के क़रीब कर देता है। यही वह नीति है जो पूँजीपति वर्ग को अधिक से अधिक धनी बनाती है, और मज़दूर और आम मेहनतकश आबादी को ग़रीबी के दलदल में धकेलती जाती है। इन कॉरपोरेट पूँजीपतियों के टुकड़ों पर पलने वाली सभी पूँजीवादी चुनावी पार्टियाँ इन्हीं नीतियों को लागू करती हैं। इसलिए 'भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी' मानती है कि सभी अप्रत्यक्ष करों को तत्काल समाप्त किया जाये और पूँजीपति वर्ग पर प्रगतिशील कराधान की व्यवस्था को लागू किया जाये।

दूसरी आम माँग जो कि RWPI का घोषणापत्र उठाता है, वह है कि **समस्त नॉन पर्फार्मिंग एसेट्स, यानी ऐसी कम्पनियाँ जो कि बैंकों से भारी क़र्ज़े का ग़बन करके, यानी कि जनता के धन का ग़बन करके बैठी हैं, या वे कम्पनियाँ जिनकी कुल सम्पदा में बड़ा हिस्सा ऋण का है, उनका तत्काल राष्ट्रीकरण किया जाये।** इसका कारण यह है कि ये कम्पनियाँ जनता के पैसों का ग़बन करके जनता को ही लूटने का काम कर रही हैं। इसलिए इनका राष्ट्रीकरण करके इन्हें समस्त जनता की सम्पत्ति घोषित किया जाना चाहिए। यह एकदम जायज़ माँग है क्योंकि ये कम्पनियाँ पूँजीवादी क़ानून के अनुसार भी ग़बन और भ्रष्टाचार में लिप्त हैं। पूँजीवादी जनवादी क़ानून के उसूलों के अनुसार भी इन्हें जनता को सौंप दिया जाना चाहिए। हमारी माँग है कि कालान्तर में, सभी कॉरपोरेट घरानों की कम्पनियों को ज़ब्त किया जाना चाहिए और उनका राष्ट्रीकरण किया जाना चाहिए। कारण यह कि इन कम्पनियों द्वारा पैदा पूरा मूल्य समूचा मज़दूर वर्ग पैदा कर रहा है। कोई एक पूँजीपति भी इन्हें अपनी निजी सम्पत्ति नहीं करार दे सकता है। पूँजीपति बोल सकता है कि कारख़ाना तो उसके बाप-दादों ने लगाया था। वैसे तो उसके लिए ज़रूरी सामान भी उसके बाप-दादों ने नहीं पैदा किया था, बल्कि मज़दूरों ने ही पैदा किया था, लेकिन यदि इस बात को छोड़ भी दें तो जितना आरम्भिक निवेश पूँजीपति ने किया था, उससे कई गुना ज़्यादा मुनाफ़ा कमाकर मज़दूर वर्ग दशकों पहले इन पूँजीपतियों को दे चुका है। आज इन सभी कम्पनियों की एक-एक कील और इन पूँजीपतियों की बनियान तक मज़दूर वर्ग की दी हुई है और अगर मज़दूर वर्ग इस समस्त सम्पदा को हस्तगत कर लेता है, तो यह पूरी तरह से न्यायपूर्ण है। इस दिशा में बढ़ने के लिए एक अहम कार्यभार है कि सभी कल-कारख़ानों और खानों-खदानों का राष्ट्रीकरण किया जाये।

इसी प्रकार RWPI का चुनावी घोषणापत्र यह माँग उठाता है कि **समूची ज़मीन का राष्ट्रीकरण किया जाना चाहिए। अर्थात्, ज़मीन को कोई बेच या ख़रीद नहीं सकता क्योंकि यह समूचे राष्ट्र की सम्पत्ति होगी।** किसानों को ज़मीन भोगाधिकार के आधार पर प्राप्त होगी। लेकिन वे उसे बेच या ख़रीद नहीं सकते हैं। हवा, पानी, और धूप के समान ही ज़मीन प्राकृतिक सम्पदा है और उसे किसी ने पैदा नहीं किया है। ऐसे में, ज़मीन में निजी सम्पत्ति का क्या तर्क हो सकता है? कोई नहीं! इसलिए ज़मीन में निजी सम्पत्ति का ख़ात्मा होना चाहिए। इसी से जुड़ी हुई माँग यह है कि यदि ज़मीन किसी की निजी सम्पत्ति नहीं है तो बड़े धनी फ़ार्मरों और कुलकों से उनकी ज़मीनें ले ली जानी चाहिए जो कि अपने निजी पारिवारिक श्रम द्वारा खेती नहीं करते, या फिर मुख्य रूप से और नियमित तौर पर मज़दूरों से खेती करवाते हैं। ऐसी सूरत में मज़दूर समूची राष्ट्र की सम्पदा पर अपनी मेहनत से फ़सल उगाते हैं और उस पूरे मूल्य को मज़दूरी देने के बाद धनी कुलक और भूस्वामी हड़प जाते हैं, जबकि न तो ज़मीन उनकी है और न ही मेहनत। इसलिए सभी बड़े फ़ार्मों का राष्ट्रीकरण कर उस पर सहकारी, सामूहिक व राजकीय यानी सरकारी मॉडल फ़ार्म बनाये जाने चाहिए। सहकारी फ़ार्म ग़रीब किसानों के सहकारी संघों को दिये जाने चाहिए, सामूहिक फ़ार्म खेतिहर मज़दूरों व ग़रीब किसानों के समूहों को दिये जाने चाहिए और राजकीय फ़ार्म पर खेतिहर मज़दूरों को राजकीय कर्मचारी के तौर पर रखकर खेती करवायी जानी चाहिए। इस प्रकार से समूची खेती को पुनर्संगठित कर देश को खाद्यान्न समस्या और भूख व कुपोषण से पूरी तरह से निजात दिलायी जा सकती है। RWPI की यह माँग पूर्ण रूप से न्यायसम्मत है, और समाजवाद के संघर्ष से सीधे तौर पर जाकर जुड़ती है।

अगली माँग एक ऐसी माँग है जो कि आज देश की जनता की प्रमुख माँग बनी हुई है। यह माँग काम के हक़, या राष्ट्रीय रोज़गार गारण्टी क़ानून की माँग है जिसके तहत सभी काम करने योग्य लोगों को साल भर का रोज़गार देना या फिर कम-से-कम रु. 10,000 बेरोज़गारी भत्ता देना सरकार की ज़िम्मेदारी होनी चाहिए। मोदी सरकार के दौर में बेरोज़गारी ने सारे कीर्तिमान ध्वस्त कर दिये हैं। फ़रवरी 2019 में यह दर 7.2 प्रतिशत पहुँच चुकी है। लेकिन वास्तव में यह इससे कहीं ज़्यादा है क्योंकि सरकारी आँकड़े बेरोज़गारों की सही गिनती नहीं करते। कारण यह है कि हमारे देश में रोज़गार गारण्टी का कोई क़ानून नहीं है। नतीजतन, तमाम तथाकथित "स्वरोज़गार" प्राप्त लोगों को वास्तव में बेरोज़गारों के रूप में नहीं गिना जाता, जबकि वे वास्तव में बेरोज़गार ही हैं और कोई रोज़गार मिलने तक रेहड़ी-खोमचा लगाने, पटरी दुकानदारी करने, लेबर चौक पर खड़े होने, हमाली या बेलदारी करने, रिक्शा खींचने, चाय-पकौड़ा बेचने, बीड़ी-सिगरेट-पान बेचने आदि को मजबूर होते हैं। अगर इन सभी वास्तव में बेरोज़गार लोगों को जोड़ा जाये तो हमारे देश में क़रीब 25 से 30 करोड़ लोग बेरोज़गारी का शिकार हैं। यह आज मज़दूर वर्ग और आम मेहनतकश आबादी की सबसे प्रमुख माँग है कि उन्हें रोज़गार की गारण्टी मिले और इसके लिए सरकार संविधान में संशोधन कर रोज़गार के अधिकार को मूलभूत अधिकार माने और रोज़गार गारण्टी क़ानून बनाकर सभी काम करने योग्य व्यक्तियों को या तो साल भर का पक्का रोज़गार दे या फिर जीवनयापन योग्य बेरोज़गारी भत्ता दे जो कि कम-से-कम रु. 10,000 होना चाहिए।

RWPI के घोषणापत्र में अगली सबसे अहम माँग है सभी नियमित प्रकृति के कामों से ठेका प्रथा का पूर्ण रूप से उन्मूलन करना। आज देश के समस्त मज़दूरों में से 90 प्रतिशत से भी ज़्यादा ठेका प्रथा के अन्तर्गत काम कर रहे हैं। इन मज़दूरों को न तो कोई श्रम अधिकार प्राप्त होता है और न ही रोज़गार सुरक्षा। सरकार से लेकर न्यायपालिका तक ठेका प्रथा नामक इस आधुनिक ग़ुलामी को बढ़ावा दे रहे हैं और सही ठहरा रहे हैं, ताकि मज़दूरों की औसत मज़दूरी को कम किया जा सके और पूँजीपतियों के मुनाफ़े को बढ़ाया जा सके। नतीजतन, यह मज़दूर वर्ग की सबसे अहम माँगों में से एक बनती है कि सभी नियमित प्रकृति के कामों में ठेका मज़दूरी को पूरी तरह से समाप्त किया जाये।

आज सरकार काग़ज़ी तौर पर न्यूनतम मज़दूरी को बढ़ाती है लेकिन यह कहीं भी लागू नहीं होती। और सरकारी तौर पर भी राष्ट्रीय न्यूनतम मज़दूरी बेहद कम है। **RWPI के एजेण्डा में यह एक प्रमुख माँग है कि राष्ट्रीय न्यूनतम मज़दूरी को कम-से-कम रु. 20,000 किया जाये और जिन राज्यों में जीवनयापन का ख़र्च ज़्यादा है वहाँ इसे और भी अधिक किया जाये।** न्यूनतम मज़दूरी के आकलन में न सिर्फ़ मज़दूर के परिवार का भोजन, बल्कि मकान के किराये, परिवहन, ईंधन, कपड़े-लत्ते, दवा-इलाज और बच्चों की शिक्षा के ख़र्च को जोड़ा जाना चाहिए। यदि इन सभी कारकों को जोड़ा जाये तो राष्ट्रीय न्यूनतम मज़दूरी कम-से-कम रु. 20,000 बनती है।

जैसा कि हमने पहले इंगित किया, देश के कुल उत्पादन में मज़दूरी का हिस्सा 1973 के 30 प्रतिशत से घटकर 11 प्रतिशत पर आ चुका है। मज़दूर पहले हमेशा से ज़्यादा उत्पादन हमेशा से कम समय में कर रहा है। तकनोलॉजी के उन्नत होने के साथ, जो कि स्वयं शारीरिक व मानसिक श्रम करने वाले मज़दूर वर्ग का ही योगदान है, मज़दूर वर्ग की उत्पादकता बेहद बढ़ चुकी है। लेकिन उसे कुल उत्पादन का हमेशा से कम हिस्सा मिल रहा है। मज़दूरों को आज हमेशा से कम वास्तविक मज़दूरी पर हमेशा से ज़्यादा काम करना पड़ रहा है। 90 प्रतिशत से ज़्यादा मज़दूर 9 से 11 घण्टे काम करते हैं और बदले में उन्हें औसतन 7 से 9 हज़ार रुपये प्रति माह मिलते हैं। ऐसे में, **RWPI ने यह माँग उठायी है कि काम के घण्टे क़ानूनी तौर पर 6 घण्टे निर्धारित किये जाने चाहिए।** आज उन्नत तकनोलॉजी के स्तर को देखते हुए 8 घण्टे से 10 घण्टे काम करने की कोई आवश्यकता नहीं है। यदि सभी मज़दूरों को 6 घण्टे के कार्यदिवस का अधिकार प्राप्त होता है, तो भारी संख्या में रोज़गार भी पैदा होगा। अभी तो यदि 8 घण्टे के ही कार्यदिवस को ही क़ानूनी तौर पर सही तरीक़े से लागू किया जाये तो करोड़ों नये रोजगार पैदा हो सकते हैं। इसीलिए **RWPI यह भी माँग उठा रही है कि श्रम विभाग में बड़े पैमाने पर श्रम निरीक्षकों और कारख़ाना निरीक्षकों की भर्ती हो और इनकी निरीक्षण टोली में मज़दूरों के चुने हुए प्रतिनिधियों को शामिल किया जाये ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि सभी श्रम क़ानूनों को सही तरीक़े से और पूर्ण रूप से लागू किया जा रहा है।**

हम सभी जानते हैं कि मज़दूर ओवरटाइम इसलिए करते हैं क्योंकि उनकी मज़दूरी बेहद कम है। अधिकांश मज़दूरों से जबरिया ओवरटाइम

(पेज 10 पर जारी)

लोकसभा चुनावों में सात सीटों पर चुनाव लड़ेंगे 'भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी (RWPI)' के मज़दूरपक्षीय उम्मीदवार!

(पेज 10 से आगे)

कराया जाता है और जहाँ वे "स्वेच्छा" से भी ओवरटाइम करते हैं उसका कारण कम मज़दूरी होता है। ओवरटाइम उनके शरीर और मस्तिष्क को तोड़ डालता है, उनकी जीवन प्रत्याशा को घटा देता है और उन्हें जल्दी बूढ़ा कर देता है। उन्हें मनोरंजन, आराम और परिवार के साथ वक्त बिताने का अवसर नहीं मिलता। ऐसे में, **एक इंसानी ज़िन्दगी के लिए ज़रूरी है कि ओवरटाइम की व्यवस्था को पूर्ण रूप से समाप्त किया जाये। RWPI ने अपने चुनावी घोषणापत्र में इस मुद्दे को भी पुरज़ोर तरीक़े से उठाया है। इसी से जुड़ा हुआ मसला रात्रि शिफ्ट का है। रात्रि कार्य को ख़त्म किया जाना चाहिए और जिन उद्योगों में रात्रि कार्य अनिवार्य है वहाँ भी इसकी सीमा 4 घण्टे तय की जानी चाहिए और मज़दूरों के संगठनों और यूनियनों से राय-मशविरा करके ही इसे लागू किया जाना चाहिए।** आज यह मेडिकल साइंस द्वारा सिद्ध तथ्य है कि रात्रि कार्य मज़दूरों के लिए और विशेष तौर पर स्त्री मज़दूरों के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। जिन उद्योगों में स्त्रियों को रात्रि कार्य करना आवश्यक हो, वहाँ उन्हें घर से लेने और घर तक छोड़ने की व्यवस्था नियोक्ता यानी कि मालिक की ज़िम्मेदारी होनी चाहिए।

स्त्री मज़दूरों की सबसे बड़ी माँग यह है कि उन्हें समान काम के लिए पुरुषों के बराबर वेतन मिलना चाहिए। यह माँग औपचारिक तौर पर सभी संगठन व केन्द्रीय ट्रेड यूनियनें उठाते रहे हैं, लेकिन इसे लेकर कोई जुझारू संघर्ष नहीं किया जा रहा है। ऐसे में, सरकार को श्रम विभाग में स्त्री निरीक्षकों की भर्ती करनी चाहिए जो उन सभी उद्योगों में जहाँ कि स्त्री मज़दूर काम करती हैं, वहाँ यह सुनिश्चित करें कि स्त्रियों को सभी श्रम अधिकार और स्त्री मज़दूरों के अधिकार प्राप्त हो रहे हैं। इन अधिकारों में कार्यस्थल पर पालना घर व क्रेच की व्यवस्था, बच्चों को दूध पिलाने वाली स्त्रियों को हर तीन घण्टे पर स्तनपान हेतु एक घण्टे का ब्रेक, गर्भवती स्त्रियों को प्रसव के छह माह पहले और छह माह बाद तक वैतनिक छुट्टी, कार्यस्थल पर साफ़-सुथरे अलग शौचालय और साफ़ पीने के पानी की व्यवस्था आदि शामिल हैं। RWPI अपने चुनावी घोषणापत्र के एजेण्डे में इन माँगों को प्रमुखता से स्थान देती है।

सभी स्कीम वर्करों, यानी विशेष योजना के तहत काम करने वाले कर्मियों, जैसे कि आँगनवाड़ी कर्मी, आशाकर्मी, आदि को स्थायी रोज़गार सुनिश्चित किया जाना चाहिए। इन विशेष स्कीमों को समाप्त कर प्रीस्कूल, पोषण, पालनाघर आदि के कार्य को बाक़ायदा सरकार की नीति का अंग बनाया जाना चाहिए और इनके लिए विभाग और उपयुक्त ढाँचा खड़ा किया जाना चाहिए। इसके बिना, इन कार्यों को विशेष स्कीमों के नाम पर चलाने का अर्थ है लाखों कर्मचारियों, विशेषकर स्त्री कर्मचारियों से बेगार करवाना। RWPI का चुनाव घोषणापत्र इन माँगों को अलग से स्थान देता है और इनके लिए संघर्ष की प्रतिबद्धता घोषित करता है।

मज़दूरों और आम मेहनतकश आबादी के लिए, जो कि किसी अन्य के श्रम का दोहन नहीं करते, राजकीय बीमा की पूर्ण व्यवस्था होनी चाहिए जिसके तहत हर प्रकार की विकलांगता, बीमारी, बच्चे के जन्म, जीवन-साथी की मृत्यु, अनाथ होने पर सरकार द्वारा बीमा राशि दी जानी चाहिए। इस बीमा योजना के लिए धन विशेष कर द्वारा पूँजीपतियों से लिया जाना चाहिए। इस प्रकार की व्यवस्था आम मेहनतकश आबादी का हक़ है, जो कि देश की समस्त धन-दौलत और सम्पदा पैदा कर रहे हैं।

घरेलू कामगार सर्वाधिक शोषित मज़दूरों में से एक हैं, जिनसे लगभग आधुनिक ग़ुलामी के हालात में काम करवाया जाता है। **RWPI का चुनाव घोषणापत्र माँग करता है कि घरेलू कामगारों के लिए अलग लेबर एक्सचेंज का गठन हो, जिसमें कि उनका पंजीकरण हो और किसी भी व्यक्ति को घरेलू कामगार की ज़रूरत पड़ने पर इस एक्सचेंज द्वारा घरेलू कामगार मुहैया कराये जायें।** घरेलू कामगारों पर न्यूनतम मज़दूरी समेत सभी श्रम क़ानून प्रदत्त अधिकार लागू हों। उनके लिए एक अलग विशेष क़ानून बनाया जाये जिसमें उनकी रोज़गार-सुरक्षा, उनके सम्मान और उनके साथ बराबरी के बर्ताव को सुनिश्चित करने के लिए भी प्रावधान किया जाये। न सिर्फ़ घरेलू कामगारों की पहचान और पंजीकरण को सुनिश्चित किया जाये, बल्कि उनके नियोक्ताओं की भी जाँच, पहचान और पंजीकरण किया जाये।

देश में करोड़ों मज़दूर, विशेषकर निर्माण मज़दूर, लेबर चौकों की श्रम मण्डियों में श्रम शक्ति बेचने को मजबूर हैं। **RWPI का घोषणापत्र माँग करता है कि लेबर चौकों के मज़दूरों के लिए भी अलग लेबर एक्सचेंज का गठन किया जाये, जिनमें उनकी दिहाड़ी न्यूनतम मज़दूरी के अनुसार और काम के घण्टे विनियमित किये जायें।** उनके पहचान कार्ड बनाये जायें और किसी भी नियोक्ता को मज़दूर रखने के लिए इन्हीं एक्सचेंजों से सम्पर्क करने की व्यवस्था बनायी जाये। सांसद के रूप में चुने जाने पर RWPI के सांसद अपने निर्वाचन क्षेत्र में ऐसी व्यवस्था बहाल करेंगे। लेकिन इसके लिए राष्ट्रीय नीति की आवश्यकता है और उसके लिए RWPI के उम्मीदवार चुने जाने पर संसद में संघर्ष करेंगे।

देश में करोड़ों की संख्या में ग्रामीण मज़दूर सबसे कठिन क़िस्म के काम करते हैं और वह भी किसी भी प्रकार की क़ानूनी सुरक्षा के बिना। **RWPI का घोषणापत्र यह माँग करता है कि सभी खेतिहर मज़दूरों के काम को श्रम क़ानूनों के मातहत लाया जाये और उनके कार्यान्वयन को सुनिश्चित करने के लिए उपयुक्त ढाँचे का निर्माण किया जाये।**

मज़दूर वर्ग की इन बुनियादी माँगों के अलावा, समस्त मेहनतकश जनता की कुछ बेहद अहम माँगें हैं, जिन्हें RWPI का चुनाव घोषणापत्र प्रखरता के साथ उठाता है। इनमें से प्रमुख हैं सभी के लिए समान और निःशुल्क शिक्षा की सरकारी व्यवस्था और निजी स्कूलों और कॉलेजों की जगह पूर्ण रूप से एक समान सरकारी स्कूलों और कॉलेजों की व्यवस्था, सार्विक स्वास्थ्य देखरेख की सरकारी व्यवस्था जिसके तहत सभी नागरिकों को निःशुल्क व समान दवा-इलाज का हक़ मिले, समस्त मेहनतकश आबादी के लिए भोगाधिकार के आधार पर सरकारी आवास की व्यवस्था जिसके लिए समस्त ख़ाली निजी अपार्टमेण्टों व मकानों को ज़ब्त किया जाये और पूँजीपति वर्ग पर विशेष कर लगाकर नये सरकारी मकानों का निर्माण किया जाये, देश में भूख और कुपोषण की समस्या को हल करने के लिए, रियायती दरों पर अनाज मुहैया कराने हेतु प्रभावी सार्वजनिक वितरण प्रणाली या राशन की दुकानों की व्यवस्था बहाल की जाये, इत्यादि।

RWPI का चुनाव घोषणापत्र सर्वहारा वर्ग और आम मेहनतकश आबादी की इन बुनियादी सामाजिक-आर्थिक माँगों के अतिरिक्त जनता की बुनियादी राजनीतिक माँगों को भी उठाता है जैसे कि धर्म को राज्य से वास्तव में और पूर्ण रूप से अलग किया जाना चाहिए, सभी धार्मिक शिक्षण संस्थानों को बन्द किया जाना चाहिए, समान नागरिक संहिता लागू की जानी चाहिए, सभी राष्ट्रीयताओं को बिना शर्त आत्मनिर्णय का अधिकार मिलना चाहिए, सभी को अपनी मातृभाषा में शिक्षण का अधिकार प्राप्त हो, किसी भी भाषा को राजकीय भाषा का दर्जा न प्राप्त हो और पूरे देश में हर स्थान पर जनता को अपनी भाषा में सभी सरकारी व न्यायिक कार्य का अधिकार हो, न सिर्फ़ अस्पृश्यता को बल्कि किसी भी रूप में जाति-आधारित भेदभाव को अपराध की श्रेणी में लाया जाना चाहिए और जाति-आधारिक वैवाहिक विज्ञापनों और जाति-आधारित पंचायतों, खापों और संगठनों पर पूर्ण रोक लगायी जानी चाहिए, दंगों के लिए ज़िम्मेदार लोगों के ख़िलाफ़ सख़्त कार्रवाई और सज़ा सुनिश्चित करने के लिए नया सख़्त क़ानून बनाया जाना चाहिए, सभी दमनकारी क़ानूनों जैसे कि आफ्स्पा, डिस्टर्ब्ड एरियाज़ एक्ट, धारा 144, एस्मा, यूएपीए, मकोका, यूपीकोका, राजद्रोह क़ानून, ऑफ़िशियल सीक्रेट्स एक्ट आदि को तत्काल प्रभाव से रद्द किया जाना चाहिए, काम्पा और ईपीए जैसे क़ानून रद्द किये जाने चाहिए जिनके ज़रिये आदिवासियों के भोगाधिकार वाली सामुदायिक सम्पदा को पूँजीपतियों के हाथों बेचा जा रहा है। इसके अलावा, RWPI का चुनाव घोषणापत्र माँग करता है कि सैनिकों की जायज़ माँगों जैसे कि वन रैंक वन पेंशन को स्वीकार किया जाना चाहिए, उन्हें राजनीतिक साहित्य पढ़ने, संगठित होने और हड़ताल करने का जनवादी अधिकार दिया जाना चाहिए।

अन्य कई आवश्यक माँगों सहित पूरा घोषणापत्र पाठक RWPI की वेबसाइट www.rwpi.org पर देख सकते हैं।

उपरोक्त माँगों के साथ RWPI आने वाले चुनावों में मज़दूर वर्ग और आम मेहनतकश जनता के स्वतन्त्र राजनीतिक पक्ष के तौर पर हस्तक्षेप कर रहा है। यह आज की ज़रूरत है कि इन बुनियादी मुद्दों पर मज़दूर वर्ग और आम मेहनतकश आबादी को संगठित किया जाये और पूँजीवादी चुनावबाज़ दलों को इन प्रश्नों पर नंगा किया जाये और उनके असली वर्ग चरित्र को जनता के सामने लाया जाये। यह सर्वहारा वर्ग को एक राजनीतिक वर्ग के रूप में संगठित करने और उसे व्यापक मेहनतकश जनता को क्रान्तिकारी आन्दोलन में नेतृत्व देने के योग्य बनाने के लिए अपरिहार्य है। RWPI इन्हीं कार्यभारों को पूरा करने वाला मज़दूरों और आम मेहनतकशों का अपना राजनीतिक दल है।

मज़दूरों और आम मेहनतकश आबादी को RWPI को वोट और समर्थन क्यों देना चाहिए?

उपरोक्त कारणों से 'मज़दूर बिगुल' 'भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी' का समर्थन करता है और मानता है कि जब तक यह पार्टी वास्तव में इन लक्ष्यों को पूरा करने के लिए कार्य करती है, सर्वहारा विचारधारा और राजनीति पर अडिग रहती है, जनवादी केन्द्रीयता के उसूलों को लागू करती है, मज़दूर वर्ग को राजनीतिक तौर संगठित करने के कामों को श्रमसाध्य रूप से करती है, तब तक 'मज़दूर बिगुल' इसे अपना समर्थन देगा। यदि भविष्य में भी RWPI क्रान्तिकारी कार्यदिशा को लागू करने और आन्तरिक तौर पर जनवादी केन्द्रीयता को लागू करने, अपने आर्थिक संसाधनों को मज़दूर वर्ग और आम मेहनतकश जनता के बीच से जुटाने और इन्हीं संसाधनों पर निर्भर रहने के निर्णय और नीति पर अडिग रहती है, तो यह उम्मीद की जा सकती है कि यह निश्चित ही देश में मज़दूर वर्ग और आम मेहनतकश जनता के स्वतन्त्र राजनीतिक पक्ष और उनके क्रान्तिकारी राजनीतिक नेतृत्व के रूप में उभरेगी और समाजवादी क्रान्ति के कार्यभारों को पूरा करने की दिशा में आगे बढ़ेगी।

इसीलिए हमारा मानना है कि आने वाले लोकसभा चुनावों में RWPI के उम्मीदवारों को मत दिया जाना चाहिए और इसे हर प्रकार का समर्थन दिया जाना चाहिए। हम सभी मज़दूरों और मेहनतकश साथियों, भाइयों और बहनों का आह्वान करते हैं कि आने वाले लोकसभा चुनावों में जहाँ कहीं भी RWPI के उम्मीदवार मौजूद हों, उन्हें वोट दें, समर्थन दें, उसके वॉलण्टियर बनें और उनकी जीत को सुनिश्चित करें।

●

अगले अंक में हम ऐतिहासिक तौर पर पूँजीवादी चुनावों में टैक्टिकल भागीदारी की क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट कार्यदिशा पर बात करेंगे और दिखलायेंगे कि किस प्रकार मार्क्स, एंगेल्स, लेनिन व माओ ने इस कार्यदिशा को प्रतिपादित किया था और आज के दौर में उसे किस प्रकार लागू किया जाना चाहिए।

अगले अंक में...

चुनावों में रणकौशलात्मक हस्तक्षेप की क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट कार्यदिशा क्या है?

चुनावों में रणकौशलात्मक हस्तक्षेप की क्रान्तिकारी कार्यदिशा के बारे में महान शिक्षकों के क्या विचार हैं?

निष्कर्ष

आनन्द तेलतुम्बड़े पर फ़र्ज़ी आरोप, तेज़ी से सिकुड़ते बुर्जुआ जनवाद की एक और बानगी

– पराग वर्मा

21वीं सदी में भारत जैसे देशों में फ़ासीवाद का जो रूप देखने में आ रहा है, वह बीसवीं सदी के यूरोप के फ़ासीवाद से इस मायने में भिन्न है कि आज फ़ासीवादी बुर्जुआ जनवाद के आवरण को औपचारिक तौर पर हटा नहीं रहे हैं। लेकिन वे बुर्जुआ जनवाद के दायरे को इतना संकुचित कर दे रहे हैं कि जनवाद का भ्रम बरक़रार रखते हुए वस्तुत: एक नग्न तानाशाही जैसी स्थिति पैदा हो गयी है। संघ परिवार और उसकी सरकार के एजेण्डे को बेशर्मी से लागू करते हुए गोदी मीडिया के ज़रिये मोदी सरकार समय-समय पर "शहरी नक्सल" का मुद्दा ज़ोर-शोर से उछालती रही है और सरकार से सवाल पूछने वालों को देशद्रोही क़रार देने की क़वायद चालू है। जनवरी 2018 में भीमा-कोरेगाँव मामले में हुई हिंसा के बाद शहरी नक्सल का हौवा खड़ा कर कई जनपक्षधर मानवतावादी बुद्धिजीवियों, कार्यकर्ताओं और अकादमिशियनों को मनगढ़ंत मामलों में गिरफ़्तार किया जा चुका है। इसी सिलसिले में इस साल की शुरुआत से ही सुरक्षा एजेंसियाँ आनन्द तेलतुम्बड़े के पीछे पड़ी हुई हैं। दूसरी ओर दलितों के ख़िलाफ़ हिंसा भड़काने की शुरुआत करने वाला मुख्य आरोपी सम्भाजी भिड़े नामक भगवाधारी सरकार के आशीर्वाद से खुला घूम रहा है।

आनन्द तेलतुम्बड़े एक अम्बेडकरवादी चिन्तक और लेखक हैं। उनके कई लेख और किताबें प्रसिद्ध हुई हैं, जिनमें वो ख़ासकर जातिवाद के ख़िलाफ़ मुखरता से अपना पक्ष लिखते रहे हैं। उन्होंने "जाति का प्रजातन्त्र", "महार : द मेकिंग ऑफ़ द फ़र्स्ट दलित रिवोल्ट" जैसी आज की बेहद प्रासंगिक किताबें लिखी हैं। उनके विचारों से हमारी तमाम असहमतियाँ हो सकती हैं, लेकिन इसमें कोई शक नहीं है कि वर्तमान फ़ासिस्ट निज़ाम के ख़िलाफ़ वे शुरू से ही लिखते और बोलते रहे हैं। ऐसे में, स्वाभाविक ही वे सरकार की आँखों में चुभते रहे हैं, इसलिए इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि सरकार उन्हें निशाना बना रही है।

1818 में पुणे के पास भीमा-कोरेगाँव नामक जगह पर अंग्रेज़ों और मराठों के बीच हुए युद्ध की 200वीं सालगिरह पर 1 जनवरी 2018 को भीमा-कोरेगाँव में हज़ारों की तादाद में दलित आबादी इकट्ठा हुई थी। इस युद्ध में अंग्रेज़ों की सेना में दलित थे जिन्होंने पेशवाओं को मात दी थी। अस्मितावादी राजनीति इसे जातिवाद पर चोट करने के प्रतीक के तौर पर लेती है। कहने की ज़रूरत नहीं कि ऐसे किसी विश्लेषण से हम इत्तेफ़ाक़ नहीं रखते, क्योंकि यह शासक वर्गों की आपस की लड़ाई थी, जिसमें दलित और पेशवा लड़ाके उनके लिए महज़ प्यादे थे। अंग्रेज़ों के राज में असल में जातिवाद और पुख़्ता ही हुआ था, कमज़ोर नहीं। जिस दिन भीमा-कोरेगाँव में यह समारोह मनाया जा रहा था, उसके बहुत पहले से ही हिन्दुत्ववादियों द्वारा मराठों को दलितों के ख़िलाफ़ भड़काया जा रहा था और इस समारोह को राष्ट्रविरोधी क़रार दिया जा रहा था। भयंकर बेरोज़गारी से जूझती हुई मराठा आबादी पहले से ही प्रतिक्रियावादी ताक़तों के प्रभाव में आकर दलितों के आरक्षण को अपनी दुर्दशा की वजह मानती रही है। ऐसे माहौल में पुणे में 31 दिसम्बर 2017 को एल्गार परिषद् की एक बैठक हुई जिसमें कई मानवाधिकार कार्यकर्ताओं ने हिस्सा लिया और अगले दिन के समारोह में लोगों से हिस्सा लेने का आह्वान किया। लेकिन अगले दिन समारोह के दौरान मराठों ने दलितों पर हमला कर दिया, जिसमें एक व्यक्ति की मृत्यु हो गयी। सरकार इसे दो पक्षों के बीच हिंसा का मामला बनाते हुए एल्गार परिषद् में शामिल हुए लोगों में से पाँच लोगों को भड़काऊ भाषण देने के आरोप में गिरफ़्तार कर लेती है।

उस समय भीमा-कोरेगाँव की घटना के बारे आनन्द तेलतुम्बड़े ने एक लेख भी लिखा था जिसमें उन्होंने दलितों के द्वारा इतिहास की इस लड़ाई के महिमामण्डन को ग़ैर-ज़रूरी बताया और यह लिखा कि उस लड़ाई के जश्न की अभी इस दौर में कोई अहमियत नहीं है, बल्कि ये समारोह लोगों को और बाँटेगा और दक्षिणपन्थी ताक़तों को इसका फ़ायदा उठाने का मौक़ा देगा। चूँकि आनन्द तेलतुम्बड़े इस समारोह के ख़िलाफ़ थे, इसलिए एल्गार परिषद् की मीटिंग के दिन वो पुणे में मौजूद होते हुए भी उसमें शामिल नहीं हुए। इसका मतलब यह हुआ कि न तो आनन्द तेलतुम्बड़े उन बुद्धिजीवियों के साथ थे जिन्होंने इस समारोह से सम्बन्धित सम्मलेन किया और न ही वो इस समारोह के पक्ष में थे जैसा कि उन्होंने अपने लेख में भी लिखा था। इन सबके बावजूद फ़ासिस्ट सरकार को कोई न कोई बहाना तो चाहिए ही था उनको और उनके जैसे अन्य मानवाधिकार के लिए लड़ती आवाज़ों को चुप कराने का। इसलिए इस घटना में प्राथमिक गिरफ़्तारियों के कुछ छ: महीने बाद सरकार ने किसी लैपटॉप से निकली कुछ चिट्ठियों का हवाला दिया और बिकाऊ मीडिया द्वारा प्रचारित किया कि माओवादियों द्वारा प्रधानमन्त्री मोदी को मारने की साज़िश रची जा रही है और यही लोग भीमा-कोरेगाँव की हिंसा से भी जुड़े हुए हैं। फिर सरकार ने कई मानवाधिकार कार्यकर्ताओं को बिना किसी जाँच के और बिना किसी वारण्ट के जेल में डाल दिया जिसमें गौतम नवलखा, सुधा भारद्वाज और वरवर राव जैसे नाम शामिल थे। किसी ठोस सबूत के बिना इन लोगों पर यूएपीए के तहत ग़ैर-ज़मानती धाराएँ लगायी गयीं।

इन गिरफ़्तारियों के दौर में मीडिया द्वारा सभी मानवाधिकार कार्यकर्ताओं को आन्तरिक सुरक्षा के लिए बहुत बड़ी चुनौती बताया गया और अर्बन नक्सल नाम से सभी को लेबल कर दिया गया। पुलिस ने बाक़ी लोगों की तरह आनन्द तेलतुम्बड़े पर भी माओवादियों का समर्थन करने, भीमा-कोरेगाँव हिंसा भड़काने और प्रधानमन्त्री मोदी की हत्या की साज़िश में शामिल होने के हास्यास्पद आरोप गढ़े हैं। एक तरफ़ एकबोटे और भिड़े जैसे लोग जो खुल के जनता को भड़काने की साज़िश में शामिल थे, वो खुलेआम घूम रहे हैं क्योंकि वो संघ के क़रीब हैं और दूसरी तरफ़ उस घटना से दूर-दूर तक कोई नाता ना रखने वाले आनन्द तेलतुम्बड़े को सरकार की नीतियों के ख़िलाफ़ लिखने और बोलने की सज़ा में बनावटी आरोप गढ़ के गिरफ़्तार करने की कोशिश जारी है।

देखा जाये तो अतीत में कांग्रेस की सरकारें भी सत्ता-विरोधी आवाज़ों का दमन करने के लिए साम-दाम-दण्ड-भेद की नीति पर अमल करती रही हैं। मोदी सरकार बस उसे और ज़्यादा खुले तौर पर और तेज़ी से कर रही है। किसी भी पूँजीवादी राज्यसत्ता के लिए पूँजीवादी लूट के रास्ते में जो भी रुकावट बनते हैं, वो सरकार के लिए एक चुनौती बन जाते हैं। पर पूँजीवादी संकट जब ज़्यादा गहरा नहीं होता तो कुछ हद तक ऐसे लोगों के लिए एक जगह दे दी जाती है, जिससे एक भ्रम बना रहता है कि समाज में शोषितों की भी कुछ सुनवाई तो होती ही है। पर जब पूँजीवाद वित्तीय पूँजी के उस दौर में प्रवेश कर चुका होता है जहाँ पूँजीवादी संकट एक विकराल रूप में सामने है और इसको सुधार पाना बुर्जुआ अर्थशास्त्रियों के बस के बाहर दिखायी पड़ रहा है, ऐसे समय में पूँजीवादी व्यवस्था को एक ऐसी सरकार चाहिए होती है जो जनता को किसी काल्पनिक शत्रु के माध्यम से भड़काये रखे और पूँजीवादी मुनाफ़े की लूट को बेरोकटोक आगे बढ़ाये। मोदी की फ़ासिस्ट सरकार लोगों को कभी हिन्दू-मुस्लिम की लड़ाई में उलझाती है तो कभी भारत-पाकिस्तान की लड़ाई में। जब जनता उसमें उलझी है तब मोदी सरकार ऐसे क़ानून और नीतियाँ ला रही है, जिससे पूँजीपतियों द्वारा मज़दूरों के श्रम की लूट और तेज़ी से हो और प्राकृतिक सम्पदा की लूट भी बेरोकटोक चले। इस खुली स्वच्छन्द पूँजीवादी लूट को आगे बढ़ाने के लिए मोदी सरकार के लिए ज़रूरी है कि इसके ख़िलाफ़ बोलने वाली हर आवाज़ को दबा दिया जाये। मोदी सरकार के दौर में बेरोज़गारी में ख़ूब बढ़ोत्तरी हुई है और रोज़गार बढ़ने की जगह हर साल घटे ही हैं, नोटबन्दी और जीएसटी के कारण कई छोटे व्यापारी भी सड़क पर आ गये हैं, मज़दूरों के शोषण में कई गुना इज़ाफ़ा हुआ है, राफ़ेल विमान और व्यापम जैसे बड़े घोटाले हुए हैं, कई उद्योगपति बैंकों को लाखों-करोड़ों का चूना लगाकर अय्याशियाँ कर रहे हैं और आदिवासियों को उनकी जल-जंगल-ज़मीन से बेदख़ल किया जा रहा है। ये सब कुछ पूँजीवादी 'विकास' का हिस्सा है और पूँजीपतियों के मुनाफ़े की हवस के लिए ज़रूरी भी। इन सभी बिगड़ते भौतिक कारणों की भी समाज में चर्चाएँ होने लगी थी और मोदी सरकार की और मोदी की एक नेता के तौर पर इमेज फीकी पड़ रही थी और फ़ासिस्टों का जनाधार खिसकता दिखायी पड़ रहा था। इसलिए हिन्दुत्ववादियों ने कभी राम-मन्दिर का मुद्दा उठाकर हिन्दुओं को भड़काया, तो कभी मोदी ने ग़लत इतिहास बताकर लोगों को उकसाने की कोशिश की। और इतना काफ़ी नहीं हो रहा था, तो तथाकथित शहरी नक्सल का मुद्दा भी उछाल दिया गया। सरकार की जनविरोधी नीतियों के ख़िलाफ़ बोलने वाले लोगों को शहरी नक्सल कहा जा रहा है और उन्हें देशद्रोही क़रार दिया जा रहा है। जो भी जनपक्षधर बात बोले या लिखे और सरकार की आलोचना करे वो देशद्रोही हो गया। सरकार की इसी कोशिश का हिस्सा है आनन्द के ख़िलाफ़ बेबुनियाद आरोप गढ़ना। ऐसा करने के पीछे सरकार की मंशा अन्य बुद्धिजीवियों के दिमाग़ में ख़ौफ़ फैलाना है।

इन हालातों में हर प्रगतिशील व्यक्ति के लिए यह ज़रूरी है कि वो आम अवाम के अधिकारों के लिए खड़ी होने वाली सभी आवाज़ों के पक्ष में बोले और लगातार सिकुड़ती जा रही जनवादी जगह को बचाने की लड़ाई में शरीक हो। प्रगतिशील लोगों की ये ठोस माँग होनी चाहिए कि यूएपीए जैसे काले क़ानूनों को ख़त्म किया जाये। ऐसे अधिनियमों का इस्तेमाल कर सरकार आनन्द तेलतुम्बड़े जैसे जनपक्षधर लोगों के साथ गुण्डे-बदमाशों जैसा सलूक करती है। आज ज़रूरत है कि हर प्रगतिशील व्यक्ति ऐसे अत्याचार के ख़िलाफ़ पुरज़ोर आवाज़ उठाये और लोगों के बीच यह बात ले जाये कि आम लोगों के अधिकारों के लिए खड़े होने वाले ही असली देशप्रेमी हैं और फ़ासिस्टों द्वारा पूँजीपतियों की चाकरी करना और लोगों के हक़ों पर डाका डालना ही असल देशद्रोह है।

8 मार्च अन्तरराष्ट्रीय स्त्री दिवस के अवसर पर कार्यक्रम

(पेज 6 से आगे)

बन गयी) दिखायी गयी। और उसपर दिलचस्प बातचीत भी हुई। यह फ़िल्म तीन अलग-अलग पीढ़ियों की स्त्रियों की सामाजिक गुलामी और उससे निकलने की जद्दोजहद को बहुत ही ख़ूबसूरत ढंग से दर्शाती है। फ़िल्म के कई दृश्यों को ऐसे मोड़ पर ख़त्म किया गया है जो एक स्त्री ज़िन्दगी के कई पहलुओं पर सोचने को मजबूर कर देते हैं।

पूर्वी उत्तर प्रदेश के विभिन्न ज़िलों में कार्यक्रम

स्त्री मुक्ति लीग, दिशा छात्र संगठन और नौजवान भारत सभा की ओर से। इलाहाबाद में इलाहाबाद विश्वविद्यालय में बातचीत और क्रान्तिकारी गीतों की प्रस्तुति तथा महिला छात्रावास परिसर में क्रान्तिकारी गीतों की प्रस्तुति, पोस्टर एवं पुस्तक प्रदर्शनी, पर्चा वितरण और कविता पाठ का आयोजन किया गया। गोरखपुर में बिस्मिल तिराहे पर पोस्टर प्रदर्शनी के ज़रिए लोगों को अन्तरराष्ट्रीय स्त्री दिवस की क्रान्तिकारी विरासत से परिचित कराया गया। अम्बेडकर नगर के सिंघलपट्टी स्थित शहीद भगतसिंह पुस्तकालय पर नौजवान भारत सभा और स्त्री मुक्ति लीग की ओर से परिचर्चा का आयोजन किया गया। चित्रकूट के रामनगर में नौजवान भारत सभा के कार्यकर्ताओं ने अन्तरराष्ट्रीय स्त्री दिवस की विरासत पर पर्चे वितरित किये। कार्यकर्ताओं ने कहा कि आज स्त्री मुक्ति आन्दोलन को एनजीओपन्थी, सुधारवादी भ्रमजालों से मुक्त करके एक क्रान्तिकारी राजनीति की दिशा में मोड़ना होगा।

लखनऊ में रैली और सभा

लखनऊ के डालीगंज के इलाके में स्त्री मुक्ति लीग और नौजवान भारत सभा की तरफ़ से एक रैली निकाली गई

रैली के बाद हुई सभा में स्त्री मुक्ति लीग की शिप्रा ने कहा कि एक लड़की को बचपन से ही कदम-कदम पर भेदभाव का सामना करना पड़ता है। उसे हर जगह यह एहसास दिलाया जाता है कि वो लड़कों से कमतर है। पढ़ाई, नौकरी से लेकर शादी तक के फैसले लेने के अधिकार लड़कियों को नहीं मिलते हैं। उनके सपनों को कुचल दिया जाता है।

मीनांक्षी ने कहा कि समाज में पुरुष स्वामित्ववादी सोच इस कदर हावी है कि लड़कियाँ अपना जीवन साथी तक नहीं चुन सकती। कोई भी महत्वपूर्ण निर्णय पुरुष लेते हैं। स्त्रियों को सिर्फ चूल्हे-चौखट और बच्चे पालने तक सीमित कर दिया जाता है।

सभा का संचालन कर रही रूपा ने कहा कि हमारी असली लड़ाई पुरूषवादी सोच से है। इसके लिए हमें संगठित होकर संघर्ष करना होगा हर स्त्री विरोधी अपराध के खिलाफ आवाज़ उठाना होगा क्योंकि हमारी चुप्पी पितृसत्तात्मक सोच को और बढ़ावा देगी। महिलाएं घर और बाहर दोहरी गुलामी झेल रहीं हैं। इस स्थिति को बदलने के लिए महिलाओं को अपनी मुक्ति की लड़ाई के साथ-साथ छात्रों, मजदूरों के चल रहे संघर्षों का भी साथ देना होगा। क्योंकि केवल अपनी लड़ाई लड़ने से स्त्री-मुक्ति सम्भव नहीं, स्त्री की मुक्ति पूरी मानवता के मुक्ति के साथ ही हो सकती है।

– बिगुल संवाददाता

नक़ली दवाओं का जानलेवा धन्धा

– डॉ. नवमीत

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के विकास से पहले बीमार होने वाले अधिकतर लोग बिना दवाओं और इलाज के ही मर जाते थे। आज हमारे पास अधिकतर बीमारियों के इलाज के लिए दवाएँ मौजूद हैं, जाँच की तकनीकें मौजूद हैं, ऑपरेशन के विकसित तरीक़े मौजूद हैं। लेकिन आज भी बीमारियों की वजह से करोड़ों लोग हर साल मर रहे हैं। 2016 में हृदय रोगों की वजह से 17.65 मिलियन यानी 1 करोड़ 76 लाख 50 हज़ार लोग मरे थे। कैंसर की वजह से लगभग 90 लाख लोग मरे थे। दूसरी बीमारियों की वजह से भी करोड़ों लोग मरे थे। कुछ लोग तो इतने गम्भीर बीमार होते हैं या फिर बीमारी ही लाइलाज होती है, जिस कारण इन्हें बचा पाना सम्भव नहीं होता। लेकिन दूसरे लोग, जिन्हें बचाया जा सकता था, वे भी अगर मृत्यु को प्राप्त हो रहे हैं तो कहीं न कहीं बहुत गड़बड़ हो रही है। अगर हम इसके कारणों की बात करें तो पहले भी बहुत से लेखों में हम इन कारणों की पड़ताल कर चुके हैं। इलाज और दवाओं के महँगा होने की वजह से, सरकार द्वारा सही ढंग से स्वास्थ्य सेवाएँ मुहैया न करवाये जाने की वजह से, मुनाफ़े की चाह में बीमारियों को बढ़ने देने की वजह से और दूसरे भी बहुत से कारण हैं जिन पर हम अक्सर चर्चा करते रहे हैं। समय पर सही इलाज न मिलना आज के समय की सबसे बड़ी स्वास्थ्य से सम्बन्धित समस्या है जोकि सीधे सीधे मुनाफ़े के खेल से जुड़ी हुई है। **आतंकवाद और युद्धों से कई सौ गुना व्यक्ति बीमारियों की वजह से असमय मृत्यु का शिकार होते हैं।** पहले एक लेख में हमने चर्चा की थी कि किस तरह मुनाफ़े के लिए सस्ती जेनेरिक दवाओं की बजाय महँगी ब्राण्डेड दवाओं को प्रोत्साहित किया जाता है जिसकी वजह से ग़रीब आबादी इलाज से बिलकुल ही दूर हो जाती है। कुछ डॉक्टर कहते हैं कि सस्ती जेनेरिक दवाएँ असर नहीं करतीं, इसलिए ब्राण्डेड दवाएँ ज़्यादा ज़रूरी हैं। लेकिन तमाम शोध यही कहते हैं कि जेनेरिक दवाएँ चिकित्सकीय गुणों में ब्राण्डेड दवाओं के बराबर होती हैं। फिर ऐसा क्या है जिसकी वजह से कुछ दवाएँ असर नहीं करतीं? या फिर ऐसा भी होता है कि कोई दवा ऐसे साइड इफ़ेक्ट पैदा कर रही है जोकि उस दवा की वजह से होने ही नहीं चाहिए थे।

2012 में पाकिस्तान में खाँसी की दवा पीने के बाद 60 लोगों की मृत्यु हो गयी। दवा की जाँच हुई तो पता चला कि यह दो अलग-अलग कम्पनियों की दवाओं को पीने से हुआ था। दोनों ही कम्पनियाँ अपनी दवा में डेक्स्ट्रोमेथोर्फ़न (Dextromethorphan) नामक एक साल्ट का इस्तेमाल कर रही थीं। इसमें कुछ भी ग़लत नहीं है। यह साल्ट खाँसी की बहुत सी दवाओं का मुख्य हिस्सा होता है और सूखी खाँसी के लिए प्रयोग किया जाता है। बहरहाल इस दवा के सैम्पल की जाँच हुई तो उसमें पाया गया कि दोनों ही कम्पनियाँ यह साल्ट भारत की एक दवा उत्पादक कम्पनी से मँगवा रही थीं। दवाओं की लेबोरेटरी जाँच की गयी तो पाया गया कि इन दवाओं में एक और साल्ट मौजूद था, जिसे इस दवा में नहीं होना चाहिए था। इसका नाम है लीवोमेथोर्फ़न (Levomethorphan)। यह साल्ट दर्दनिवारक दवा मॉर्फ़िन की ही तरह का होता है, लेकिन उससे 5 गुना ज़्यादा तेज़ होता है। मॉर्फ़िन अफ़ीम से बनती है और मुख्यतः बहुत तेज़ दर्द, उदाहरण के तौर पर कैंसर के मरीजों को, में देने के काम आती है और इसकी ज़्यादा मात्रा नुक़सानदेह होती है। इतनी कि मृत्यु का कारण भी बन सकती है। इसलिए यह दवा सामान्य प्रिस्क्रिप्शन पर भी किसी मेडिकल स्टोर से नहीं मिलती। और अगर इससे भी 5 गुना ज़्यादा तेज़ दवा ओवरडोज़ यानी ज़रूरत से ज़्यादा होकर शरीर में पहुँच जाये तो मृत्यु होने का ख़तरा बहुत ज़्यादा बढ़ जायेगा। पाकिस्तान में यही हुआ था।

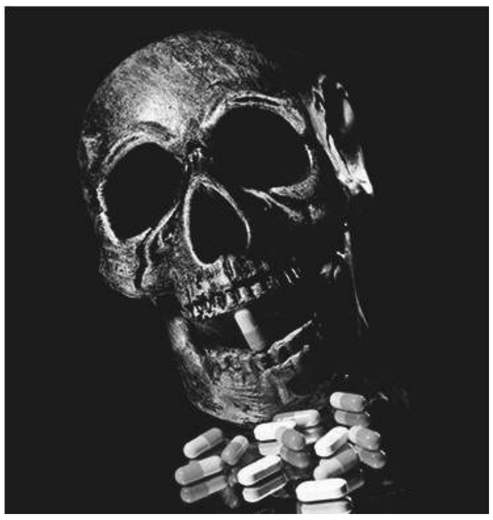

2013 में पराग्वे में ऐसी ही एक घटना घटी। यहाँ 44 बच्चों को साँस लेने में दिक़्क़त के चलते एक अस्पताल में भर्ती करवाया गया। पूछने पर पता चला कि इन सभी बच्चों ने खाँसी की दवा पी थी। तुरन्त जाँच की गयी और विश्व स्वास्थ्य संगठन का डाटाबेस खंगाला गया तो ज्ञात हुआ कि इसमें भी उसी भारतीय कम्पनी द्वारा भेजा गया साल्ट डेक्स्ट्रोमेथोर्फ़न मौजूद था। पता चला कि यह भी लिवोमेथोर्फ़न से दूषित था। पराग्वे के इस अस्पताल में डॉक्टरों ने तुरन्त इन बच्चों का इलाज शुरू किया और इन्हें बचाने में सफल रहे।

इस केस में तो डॉक्टरों को पता चल गया था कि दवा में कुछ ग़लत चीज़ मिली हुई है और समय पर इलाज भी शुरू हो गया। लेकिन अगर यही न पता चले कि गड़बड़ क्या है तो क्या होगा? मान लीजिए कोई एण्टीबायोटिक दवा है, और उसमें जो एण्टीबायोटिक साल्ट होना चाहिए उसकी बजाय कोई और चीज़ मौजूद है या फिर साल्ट की ही मात्रा कम है तो क्या होगा? ज़ाहिर है, दवा वह असर नहीं करेगी जो उसे करना चाहिए था और इन्फ़ेक्शन बढ़ता चला जायेगा। या फिर ये भी हो सकता है कि न तो दवा असर ही करे और साथ में दवा की वजह से अलग नुक़सान भी हो जाये। एक तो वैसे ही एण्टीबायोटिक रेज़िस्टेंस यानी एण्टीबायोटिक दवाओं के खिलाफ़ जीवाणुओं की प्रतिरोधक क्षमता एक गम्भीर समस्या बनकर खड़ी है, ऊपर से घटिया, नक़ली और मिलावटी दवाओं ने समस्या को इतना बढ़ा दिया है कि आने वाला समय बहुत मुश्किल होने वाला है। मरीजों के लिए भी और डॉक्टरों के लिए भी। दूसरा ये कि इस तरह की मिलावटी और नक़ली दवाएँ एण्टीबायोटिक रेज़िस्टेंस का एक मुख्य कारण है। नक़ली, घटिया क्वालिटी की और मिलावटी दवाएँ सिर्फ़ एक हिन्दुस्तान या पाकिस्तान की समस्या नहीं हैं। बल्कि पूरी दुनिया इस बीमारी से पीड़ित है। ख़ासतौर पर ग़रीब मेहनतकश जनता, जिन्हें पता ही नहीं होता कि उन्हें क्या दवा दी जा रही है और इसका क्या असर रहेगा।

विश्व स्वास्थ्य संगठन ने नक़ली दवाओं की परिभाषा दी है। इसके अनुसार ये वे दवाएँ हैं जिनमें जानबूझकर धोखे की नियत से उनकी पहचान और/या स्रोत की जानकारी से सम्बन्धित ग़लत लेबल लगाया जाता है। यह परिभाषा उत्पाद, इसकी पैकेजिंग या पैकेजिंग व लेबल पर मौजूद किसी भी अन्य जानकारी पर लागू होती है। इस तरह की जालसाजी ब्राण्डेड और जेनेरिक दोनों तरह के उत्पादों के साथ हो सकती है और इस तरह के जाली उत्पादों में सही घटकों वाले या ग़लत घटकों वाले, बिना सक्रिय घटक वाले, अपर्याप्त सक्रिय घटकों वाले या नक़ली पैकेजिंग वाले उत्पाद शामिल हैं। नक़ली दवाओं यानी counterfeit drugs में और दोषपूर्ण दवाओं यानी defective drugs में अन्तर समझना भी ज़रूरी है। दोषपूर्ण दवाएँ वे होती हैं जो बनायी तो क़ानूनी तरीक़े से जाती हैं लेकिन इनके उत्पादन की प्रक्रिया बनावट में ख़राबी आ जाती है। इसके अलावा घटिया क्वालिटी की दवाएँ यानी substandard drugs होती हैं। ये वे होती हैं जिनके घटक तो सही होते हैं लेकिन इनकी या तो गुणवत्ता ख़राब होती है या फिर सक्रिय घटक की मात्रा ही इतनी कम होती है कि ये दवा असर ही नहीं करतीं। इसके अलावा इस तरह की तमाम दवाओं में मिलावट भी हो सकती है। इनमें भारी धातुओं की मिलावट हो सकती है। 2010 में कोरिया में हुई एक स्टडी में पाया गया था कि ग़ैरक़ानूनी तरीक़े से ऑनलाइन चलने वाली फ़ार्मेसियों की 26 प्रतिशत दवाओं में ऐसी चीज़ें पायी गयी हैं जो कैंसरकारक हैं; गुर्दों, लीवर और केन्द्रीय स्नायु तन्त्र के लिए हानिकारक हैं। इसमें ज़हरीले पदार्थों जैसे कीटनाशकों की मिलावट भी हो सकती है। 2009 में नाइजीरिया में ऐसी दवा से 84 बच्चों की मृत्यु हो गयी थी। इनमें धूल, मिट्टी, टेलकम पाउडर की मिलावट भी हो सकती है। या फिर, जैसा कि हम पहले ही बात कर चुके हैं, सक्रिय घटक कम हो सकते हैं या फिर ऐसा भी हो सकता है कि सक्रिय घटक हो ही ना। 2012 में फ़ार्मास्यूटिकल सिक्योरिटी इंस्टिट्यूट (PSI) नामक एक ग़ैर लाभकारी संगठन ने अनुमान लगाया था कि 523 अलग-अलग तरह की दवाओं में इस तरह की जालसाजी होती है। 2012 से 2019 तक 7 साल में तो यह संख्या और भी अधिक बढ़ चुकी होगी।

इस तरह की दवाएँ नुक़सान क्या करती हैं? हर वो नुक़सान जो दवा न मिलने की वजह से बीमारी करती है। और साथ में अतिरिक्त नुक़सान जो इस तरह की दवाओं की मिलावट की वजह से होता है। अगर कोई इस तरह की दवा ले तो मृत्यु हो सकती है। 2012 में अमेरिका में एक मज़दूर को दर्द का इंजेक्शन दिया गया था और कुछ समय के बाद उसकी मृत्यु हो गयी। कारण यह था कि जिस दवा का इंजेक्शन दिया गया था, वह एक फफ़ून्द से दूषित थी। इंजेक्शन के साथ फफ़ून्द उसके शरीर में चली गयी और फफ़ून्द के इन्फ़ेक्शन की वजह से उसके दिमाग़ में सूजन आ गयी। पता चला कि इस कम्पनी की इस दवा की वजह से अमेरिका में 800 लोगों को दिमाग़ी सूजन हो गयी थी, जिनमें से 64 लोग मर गये थे।

अगर किसी एण्टीबायोटिक दवा में मिलावट है, या फिर उस दवा में सक्रिय घटक की मात्रा ही कम है, तो ज़ाहिर है कि यह दवा मरीज को देंगे तो इसकी ख़ुराक़ कम रहेगी और यह पर्याप्त असर नहीं करेगी। इसके अलावा एण्टीबायोटिक रेज़िस्टेंस के उभरने का एक कारण अपर्याप्त ख़ुराक़ देना भी है। इस तरह से अगर किसी जीवाणु में इस दवा के खिलाफ़ एण्टीबायोटिक रेज़िस्टेंस ज़्यादा हो गया तो शुद्ध दवा भी उस जीवाणु पर असर नहीं करेगी। इसका सीधा-सीधा असर ये होगा कि दवा के असर से प्रतिरोधित जीवाणु का प्रसार ज़्यादा हो जायेगा और फिर दवा उन मरीजों में भी काम करना बन्द कर देगी जिन्होंने यह दवा कभी ली ही नहीं थी। मतलब इस तरह की नक़ली, मिलावटी या घटिया क्वालिटी की दवाएँ पूरी मानवता के लिए ख़तरा बन रही हैं।

हमारा देश आज के समय में पूरी दुनिया में जेनेरिक दवाओं का सबसे बड़ा निर्यातक है। और जेनेरिक दवाओं के साथ-साथ नक़ली दवाओं का कारोबार भी सबसे ज़्यादा हमारे देश में ही होता है। यहाँ से पूरी दुनिया में नक़ली दवाएँ भेजी जा रही हैं। 2013 में रैनबैक्सी नामक भारतीय दवा कम्पनी पर 500 मिलियन अमेरिकन डॉलर का जुर्माना लगा था, क्योंकि इस कम्पनी ने ग़लत डाटा उपलब्ध करवाया था और यह सुरक्षा मानकों पर खरी नहीं उतर रही थी। 2014 में जर्मनी ने भारत की 80 दवाओं को इसी आधार पर प्रतिबन्धित कर दिया था। भारत के मुख्य दवा नियन्त्रक ने बयान दिया कि अमेरिका के मानकों पर अगर हम चलने लगे तो हमें सभी दवाएँ बन्द कर देनी पड़ेंगी। हालाँकि यह कम्पनियों के बचाव में दिया गया बयान था, लेकिन इसने यह साबित कर दिया कि भारत और अन्य विकासशील देशों में कोई भी दवा मानकों पर खरी नहीं उतरती। इसलिए मानकों को ही निम्नस्तर पर ला दिया गया है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार कम और मध्य आय वाले देशों में कम से कम 10 प्रतिशत दवाएँ घटिया गुणवत्ता की हैं।

ज़ाहिर है कि यह सारा खेल मुनाफ़े पर टिका हुआ है। ज़्यादा से ज़्यादा मुनाफ़ा कमाने के चक्कर में दवाओं की क्वालिटी के साथ समझौता किया जाता है, मानकों को नीचे लाया जाता है, जो मानक हैं उनके अनुसार भी काम नहीं किया जाता। इसकी वजह से दवा की क्वालिटी ख़राब होती है। या फिर जानबूझकर मिलावट की जाती है, ग़लत लेबलिंग की जाती है। पहले से ही बर्बाद स्वास्थ्य ढाँचा वैसे ही बीमारियों से लड़ नहीं पा रहा था, नक़ली और घटिया दवाओं के कारोबार ने उसे बिलकुल ही पंगु बना दिया है। इन सबका ख़ामियाज़ा भुगतना पड़ रहा है भारत ही नहीं बल्कि पूरी दुनिया की आम मेहनतकश आबादी को। यूँ ही मेहनतकश को स्वास्थ्य सुविधाएँ नहीं मिलती हैं, ऊपर से अगर अपनी दिन-रात की हाड़तोड़ मेहनत से की हुई कमाई से अगर दवा ख़रीदने की नौबत आ जाये तब भी उसे मिलता है दवा के रूप में ज़हर। मतलब यह कि ग़रीब मज़दूर पर तो तिहरी मार पड़ रही है। श्रम की लूट, सेहत की लूट और फिर कमाई की लूट के बदले में ज़हर की सप्लाई। बल्कि इस ज़हर का शिकार सिर्फ़ मेहनतकश नहीं बल्कि मध्यवर्गीय आबादी भी है। पूँजीवाद ने धरती की हवा प्रदूषित कर दी है, पानी प्रदूषित कर दिया है, जैव सन्तुलन बिगाड़ दिया है और जनता की सेहत से खिलवाड़ भी किया जा रहा है। यह तब तक जारी रहेगा, जब तक मुनाफ़े पर आधारित पूँजीवादी व्यवस्था मौजूद है। **यह व्यवस्था कैसे ख़त्म हो, इस विषय पर हम सबको मिलकर काम करना होगा। डॉक्टरों को, मज़दूरों को, छात्रों को, आम जनता को सबको। आखिर यह हम सबसे जुड़ा हुआ मसला है।**

इंग्लैण्ड में प्रवासी मज़दूरों के बुरे हालात

बेरोज़गारी, शोषण-उत्पीड़न से बचने के लिए परदेस जाने वाले मेहनतकश वहाँ भी पूँजी के ज़ालिम पंजों के शिकार

– रिम्पी गिल

लेखिका पिछले कई वर्षों से इंग्लैण्ड में रहकर एक मेहनतकश के तौर पर काम कर रही हैं। यह लेख उनके अपने और उनके करीबी लोगों के निजी अनुभवों पर आधारित है। उनका कहना है कि वहाँ जितने लोग हैं उतनी ही कहानियाँ, उतनी ही त्रासदियाँ हैं। दूर के ढोल सुहाने लगते हैं और भारत से बहुत से मेहनतकश यहाँ की बेरोज़गारी, शोषण-उत्पीड़न से बचने के लिए किसी न किसी तरह विदेश जाने की कोशिश करते रहते हैं। लेकिन ज़्यादातर के लिए वास्तविकता कुछ और ही होती है। – सं.

उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बाद भी जब नौकरी नहीं मिलती तो बेरोज़गारी से तंग आकर नौजवान क़र्ज़े लेकर, ज़मीनें, गहने आदि बेचकर विदेशों की ओर कूच करने को मजबूर हैं। जिनके पास थोड़ी-बहुत दौलत है या परिवार के किसी मेम्बर के पास आमदनी का कोई पक्का साधन है, वो आईलेट्स वग़ैरह करके विदेश जाने का तरीक़ा निकालते हैं लेकिन जिनके पास कम पैसा है और बेचने को भी कुछ ख़ास ज़मीन, गहने या सामान नहीं है, वो 5% से 10% भारी भरकम ब्याज दरों पर पैसे क़र्ज़ा लेकर गुप्त तरीक़े से विदेश जाने को मजबूर हैं। लेकिन यह बहुत ही ख़तरनाक रास्ता है। इसे डोंकी लगाना कहते हैं। इसमें नौजवानों के हालात युद्ध पर गये किसी सिपाही जैसे होते हैं जिसे नहीं पता कि कल का सूरज देख पायेगा या नहीं। एजेण्ट नौजवानों के ग्रुप बनाकर भेजते हैं। इंग्लैण्ड आने की क़ीमत 3 लाख से 5 लाख है। लेकिन इस तरीक़े से विदेश जाने वाले नौजवानों को रास्ते में आने वाली मुसीबतों के बारे में नहीं बताया जाता। ज़ाहिर है, एजेण्ट को अपने पैसे तक ही मतलब होता है।

लेकिन पढ़ाई करने या पढ़ाई करके विदेशों में आने वाले नौजवानों के हालात भी कुछ ज़्यादा अच्छे नहीं होते। ज़्यादातर को काम करने की परमिशन नहीं होती है। और अगर काम करने की परमिशन नहीं है तो डोंकी लगा कर पहुँचने वाले और डिगरी लेकर या डिगरी लेने आने वाले के हालात यहाँ आकर एक जैसे ही हो जाते हैं। दुनिया भर में मज़दूरों के हालात एक जैसे ही हैं। देश कोई भी हो उनका वहाँ की सरकारों, कम्पनियों और छोटे-बड़े मालिकों द्वारा ख़ूब शोषण किया जाता है। भारत में तो आये दिन ही मज़दूरों की मार-पिटाई, उनको मज़दूरी न देना, उनको मानसिक और शारीरिक यातनाएँ देने की ख़बरें मीडिया में आती रहती हैं।

पंजाब से 16 साल पहले डोंकी लगाकर इंग्लैण्ड पहुँचे लाड्डी ने अपनी आपबीती सुनायी जो रोंगटे खड़े कर देने वाली थी। उन्हें एक ग्रुप बनाकर भारत से बाहर भेजा गया था रूस के रास्ते से, वह कई दिन भूखे-प्यासे रहे। कड़ाके की सर्दी में उन्हें जंगली रास्तों से होते हुए यूरोप पहुँचना था और वहाँ से इंग्लैण्ड। वह रोज़ कई मील चलते। उनके मुताबिक़ हर वक़्त उनके सर पर तलवार लटकती रहती उन्हें एजेण्ट के आदमियों के मुताबिक़ ही हर काम करना होता था किसी प्रकार की कोई भी चूक होने पर जान जाने का ख़तरा था। जो चल नहीं सकते थे या रास्ते में आने वाले कठिन हालात को झेलने में असमर्थ होते उन्हें जान से मार देने के आदेश होते। लाड्डी ने बताया कि वह बड़ी मुश्किलों को झेलने के बाद यूरोप से एक ट्रक में, जिसमें धागे के बड़े-बड़े बण्डल भरे पड़े थे, छुपकर इंग्लैण्ड पहुँचने में कामयाब हुआ था। कुछ हफ़्ते पहले ही बरमिंघम सिटी सेण्टर में इसी तरीक़े से मुक्तसर पंजाब से आये नौजवान से मुलाक़ात हुई जो बड़ी मुश्किल से इंग्लैण्ड पहुँचा था। रात के 11 बजे थे उसके पास न कोई पैसा था, न ही इतनी ठण्ड में रहने को कोई ठिकाना। उसके कपड़े बहुत मैले और जूते फटे हुए थे। उसे देख कर सहज ही यह अन्दाज़ा लगाया जा सकता था कि वह बहुत बुरे वक़्त से गुज़र कर यहाँ पहुँचा है। उसने बताया कि वह क़र्ज़ा लेकर पंजाब से यहाँ काम करने के लिए आया है। घर में केवल उसकी बूढ़ी माँ है। वह उसे वहाँ अकेला छोड़ कर नहीं आना चाहता था, लेकिन कोई काम ना होने की वजह से उसे यह क़दम उठाना पड़ा।

लेकिन जो मज़दूर भारत से बाहर रहते हैं उनके हालात भी कुछ ज़्यादा अलग या अच्छे नहीं हैं। यूके में कामगारों के काम करने, उनके जीवन स्तर को उँचा उठाने, काम करने की जगहों पर सुरक्षा को यक़ीनी बनाने के लिए कई क़ानून हैं। लेकिन जब बात बाहर से आये मज़दूरों की होती है, तो ये सब क़ानून धरे रह जाते हैं। पिछले 25 साल में यूके में बाहर से आकर यहाँ रहने वाले प्रवासियों की गिनती दोगुनी (37 से 85 लाख) से भी ज़्यादा हो गयी है।

अकेले भारतीयों की संख्या यहाँ 14 लाख के क़रीब है। इतनी बड़ी आबादी में ग़ैर क़ानूनी तरीक़े से यहाँ रहने वाले भारतीयों की संख्या 75000 से 100000 के क़रीब है। प्रवासी मज़दूरों के लिए यहाँ काम मिलने में बड़ी दिक़्क़त होती है। और काम की परमिशन नहीं है तो मुसीबतें दूगनी हो जाती हैं। जिनके पास काम करने की परमिशन नहीं है वो ज़्यादातर बिल्डिंग लाइन और कंस्ट्रक्शन का काम करते हैं और यह बहुत ही मुश्किल काम है, ख़ास करके इस ठण्डे देश में जहाँ हड्डियों को चीरने वाली सर्दी के मौसम में तापमान -15 तक चला जाता है। ऐसे ख़तरनाक मौसम में मज़दूरों को काम करने के लिए मजबूर होना पड़ता है। कंस्ट्रक्शन का काम करने वाले मज़दूरों को बहुत ही कम मज़दूरी दी जाती है। शुरुआत £25-£35 से होती है और इतने कम पैसे देने की वजह काम का तर्जुबा कम होना या ना होना बताया जाता है। काम करने की जगहों पर सुरक्षा की ओर भी कोई ध्यान नहीं देता, न ही मज़दूरों को काम करने के लिए उपयुक्त सामान मुहैया करवाया जाता है। वजह है कम से कम लागत में मज़दूरों से काम निकलवाना भले ही इस में उनकी जान को ख़तरा हो। अगर काम करते समय कोई हादसा हो भी जाये तो उसे हर मुमकिन कोशिश करके छुपाया जाता है, क्योंकि अगर हेल्थ एण्ड सेफ़्टी वालों को इसकी ज़रा भी भनक लग जाये तो वह काम करवाने वाले और करने वालों को पकड़कर अन्दर कर सकते हैं। मज़दूर जो आया ही इस देश में काम करने के लिए है वो भी बिना किसी पेपरवर्क के, वह अपने साथ हुए हादसों को सबसे पहले छुपाता है। अगर किसी के पास ड्राइविंग लाइसेंस है तो काम थोड़ा आसानी से मिल जाता है क्योंकि ठेकेदार उससे ड्राइवर का काम भी लेता है और मज़दूर का भी। कंस्ट्रक्शन का काम करने वाले जसवीर जिसके पास ड्राइविंग लाइसेंस भी था, को रोज़ाना बरमिंघम से ऑक्सफ़ोर्ड काम करने के लिए जाना पड़ता था। वह हर रोज़ 78 मील गाड़ी चलाकर काम पर पहुँचता और वहाँ कड़ी मेहनत करने के बाद देर रात फिर वापस 78 मील गाड़ी चला कर वापस घर आता। वो हर रोज़ सुबह 6 बजे घर से निकलता ठेकेदार को उसके घर से लेकर फिर काम पर जाता। जसवीर को इतने सख़्त काम करने के बदले 45 पौंड ही दिहाड़ी मिलती और ऊपर से वह अपनी गाड़ी भी इस्तेमाल करता था। बस तेल का ख़र्चा ठेकेदार देता बाक़ी गाड़ी के रखरखाव और इंश्योरेंस का सारा ख़र्चा जसवीर को ही उठाना पड़ता। इन सब ख़र्चों के बाद उसे 35 पौंड ही बचते जबकि ठेकेदार को उससे आधी से भी कम मेहनत करने के 150 से 200 पौंड तक दिहाड़ी मिलती।

बिना काम की परमिशन वाले मज़दूरों को दूसरों के मुक़ाबले दुगना, तिगुना काम करना पड़ता है। जिसकी वजह से उन्हें कई प्रकार की मानसिक और शारीरिक बीमारियाँ भी लग जाती हैं।

बिना काम की परमिशन या बिना किसी पेपरवर्क के यहाँ रहने वाली एक बड़ी आबादी मालिकों के शोषण का शिकार हर रोज़ होती है। मज़दूरों के पैसे देने से ठेकेदार और मालिक अक्सर ही मुकर जाते हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि मज़दूर अपनी फ़रियाद किसी के पास नहीं ले जा सकता। अगर अपना मुँह खोलेगा तो ख़ुद ही फँसेगा। अगर वह कोई और काम ढूँढ़ने की कोशिश भी करें तो मालिकों द्वारा उन्हें ब्लैकमेल किया जाता है। इसी डर से ये प्रवासी मज़दूर जैसा मालिक कहे वैसा ही करते हैं और कहीं और काम भी नहीं ढूँढ़ते, जब तक कि मालिक ख़ुद निकाल न दे।

बरमिंघम के हैण्डस्वर्थ इलाक़े में सोहो रोड काफ़ी मशहूर है। इस रोड पर 350 से भी ज़्यादा दुकानें हैं। ज़्यादातर दुकानें भारतीयों की हैं, उसके बाद पाकिस्तानी, अफ़ग़ानी, और अफ़्रीकी लोगों की। यह इलाक़ा प्रवासी मज़दूरों की लूट का अड्डा है। यहाँ कुछ ही दुकानें हैं जहाँ किसी को सरकारी मिनिमम वेज़ मिलती है। इस समय मिनिमम वेज़ £7.83 प्रति घण्टे के हिसाब से मिलते हैं जो इस अप्रेल से £8.21 हो जायेगी। लेकिन यहाँ काम करने वाले मज़दूरों को मिलती है £2 प्रति घण्टे के हिसाब से। अगर थोड़ा अनुभव है तो £3 और अगर कोई एक्सपर्ट हो तो £5, इससे ज़्यादा नहीं। सोहो रोड पर काम करने वालों में ज़्यादा गिनती महिलाओं की है। यहाँ एक ग्रोसरी स्टोर (ऐसऐण्डी) पर काम करने वाली महिला ने बताया कि वह जिस स्टोर में काम करती है, वहाँ का मालिक उन्हें पेशाब तक करने नहीं जाने देता। वे बस ब्रेक में ही बाथरूम जा सकती हैं। अगर ड्यूटी टाइम में जाना पड़ भी जाये तो बहुत मिन्नतें करनी पड़ती हैं। इसी वजह से वह पानी भी नहीं पीती काम पर।

इसी रोड पर एक ड्राइक्लीन की बड़ी मशहूर दुकान है (दुकान का नाम मिडलैण्ड ड्राइक्लीन)। यहाँ अक्सर ही वैकेंसी का बोर्ड लगा रहता है। यह बड़ा ही कारगर पैंतरा है लोगों से काम की ट्रेनिंग के बहाने फ़्री काम करवाने का। यहाँ दो हफ़्ते की ट्रेनिंग के कोई पैसे नहीं मिलते कामगारों को (कोई भी नहीं देता) दो हफ़्ते की ट्रेनिंग के बाद तीसरे हफ़्ते में मज़दूर को काम में नुक़्स निकालकर या कोई और बहाना बनाकर वहाँ से निकाल दिया जाता है। उसकी जगह कोई और अनजान धोखा खाने के लिए आ जाता है। यहाँ काम करने वाली एक लड़की ने बताया कि इस लौण्ड्री में सभी औरतें ही काम करती हैं। काम काफ़ी मुश्किल है लेकिन करना ही पड़ता है। भारी भरकम स्टीमर ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर ले जाने होते हैं, यहाँ तक कि अगर मज़दूर महिला गर्भवती हो तो भी उसे इतना मुश्किल और भारी काम करने को कहा जाता है और यहाँ भी 2 पौंड प्रति घण्टे के हिसाब से ही पैसे मिलते हैं। एक साल के बाद 3 पौंड प्रति घण्टा मिलना शुरू होता है।

ये तो कुछ ही उदाहरण हैं मज़दूरों की लूट के। परदों के पीछे तो मज़दूरों पर मालिकों द्वारा किये जाने वाले ज़ुल्मों के रोज़ नये कीर्तिमान बनते और टूटते हैं।

प्रवासी मज़दूरों के हालात यहाँ बहुत दयनीय और गम्भीर हैं। यहाँ उन्हें ग़ुलामों की तरह ज़िन्दगी बसर करनी होती है। काम की परमिशन या पेपरवर्क नहीं होने की वजह से वह किसी से भी अपने पर होने वाले ज़ुल्मों की शिकायत नहीं करते। उन्हें डर होता है कि कहीं कोई इमीग्रेशन को शिकायत ही न कर दे। उनकी मजबूरी का फ़ायदा उठाने के लिए यहाँ कई तरह के आपराधिक ग्रुप भी सक्रिय रहते हैं। ये ग्रुप प्रवासी लोगों को निशाना बनाते हैं जिनके पास बैंक अकाउण्ट और ड्राइविंग लाइसेंस है मगर अब वीज़ा ख़त्म हो चुका है और वह ओवर सटे हो चुके हैं। जो कि यहाँ के क़ानून के मुताबिक़ अपराध है। ऐसे अपराधिक ग्रुप लोगों को बैंकों से लोन लेने में मदद करने का जाल बुनते हैं। अगर सामने वाले को ज़्यादा अंग्रेज़ी नहीं आती है तो काम और भी आसान हो जाता है। इन ग्रुपों को चलाने वाले बड़े ही शातिर और सुलझे हुए खिलाड़ी होते हैं। वह पहले लोगों से दोस्ती करते हैं। फिर उनकी कमज़ोरियाँ तलाशते हैं। फिर उन्हें लालच देकर उनका विश्वास जीतकर उनकी आईडी का ग़लत इस्तेमाल करते हैं। ऐसे ग्रुप लोगों को वीआईटी फ्रोड में फँसा कर ख़ुद चालाकी से निकल जाते हैं। इस काम में लाखों-करोड़ों के हेरफेर होते हैं यहाँ जिसकी आईडी इस्तेमाल होती है उसे इतने बड़े घपले का पता भी नहीं होता। अगर पता चल भी जाये तो उसे ब्लैकमेल किया जाता है और जान से मारने की धमकी दी जाती है। सारा गेम इतनी सफ़ाई से खेला जाता है कि फँसता हर हाल में विक्टम ही है। और चालबाज़ प्रति गेम में £30,000 से £50,0000 तक बनाकर चला जाता है।

औरतों के हालात और भी बद्तर हैं। बहुत सारी लड़कियाँ जो अकेली रहती हैं उनको काम दिलाने के झाँसे में फँसाकर देह व्यापार के घिनौने धन्धे में धकेल दिया जाता है। पंजाब से ही स्टूडेण्ट वीज़ा पर आयी लड़की (जिसका नाम बताना उचित नहीं) को जब काम नहीं मिला तो वह देह व्यापार का काम करने लगी। यहाँ सोहो रोड पर ही साबी नाम की औरत स्टूडेण्ट और काम की तलाश करती लड़कियों को अपने पार्लर और बुटीक पर काम देने के बहाने अपने पास बुलाकर थोड़ा-बहुत काम देकर मदद करने का ढोंग करती। फिर मौक़ा देखकर कम समय में ज़्यादा पैसे कमाने का लालच देकर उन्हें क्लबों में नाचने के लिए उकसाती। वह कहती कि अगर वो उसके साथ कोपरेट करेंगी तो 350 से 500 पौंड प्रति हफ़्ता तक कमा सकती हैं। रवीता, कमल और किरन, जो उसके पास काम करती थीं, की ज़िन्दगी भी न जाने कितनी भयानक होती अगर वो समय रहते साबी के गन्दे इरादों को न भाँप जातीं।

प्रवासी मज़दूरों की बदहाली दूर करने के लिए यहाँ कोई नियम नहीं, कोई यूनियन नहीं। इन चमकते विकसित देशों की अर्थव्यवस्था की रीड़ की हड्डी हैं ये प्रवासी मज़दूर जो अपना घर-परिवार सब छोड़कर यहाँ गुमनाम नारकीय ज़िन्दगी बसर करने को मजबूर हैं। कितने ऐसे मज़दूर हैं जो 10-15 सालों से वापस घर नहीं जा सके और यहाँ एक मशीन की तरह काम कर रहे हैं जिसका रिमोट मालिकों के हाथ में है।

लड़ाई का कारोबार

– बेर्टोल्ट ब्रेष्ट

जर्मनी के प्रसिद्ध कवि बेर्टोल्ट ब्रेष्ट की नौ छोटी कविताएँ जो उन्होंने द्वितीय विश्वयुद्ध के ठीक पहले लिखी थीं जब पूरा जर्मनी हिटलर की अगुवाई में नात्सियों द्वारा भड़काए गए युद्धोन्माद के नशे में डूबा हुआ था! अंतिम कविता ब्रेष्ट ने 1945 में युद्ध की समाप्ति के बाद लिखी थी जब पूरे यूरोप और सोवियत संघ पर तबाही का कहर बरपा करने के बाद जर्मनी भी युद्ध में पराजित और पूरी तरह से बर्बाद हो चुका था I युद्धोन्मादी अंधराष्ट्रवाद और फासिस्ट बर्बरता के नतीजे भुगतने के बाद, जर्मनी इस ऐतिहासिक अपराध-बोध में डूबा हुआ था कि वह नात्सियों द्वारा भड़काए गए जुनून में बह गया था जिसकी कीमत पूरी मनुष्यता ने चुकाई! ब्रेष्ट की यह कविता इसी माहौल और मनःस्थिति को अभिव्यक्त करती है!

(1)

लड़ाई का कारोबार

एक घाटी पाट दी गयी है
और बना दी गयी है एक खाई।

(2)

यह रात है

विवाहित जोड़े
बिस्तरों में लेटे हैं
जवान औरतें
अनाथों को जन्म देंगी।

(3)

ऊपर बैठने वालों का कहना है

ऊपर बैठने वालों का कहना है :
यह रास्ता महानता का है
जो नीचे धँसे हैं, उनका कहना है :
यह रास्ता क़ब्र का है।

(4)

दीवार पर खड़िया से लिखा था

दीवार पर खड़िया से लिखा था :
वे युद्ध चाहते हैं
जिस आदमी ने यह लिखा था
पहले ही धराशायी हो चुका है।

(5)

जब कूच हो रहा होता है

जब कूच हो रहा होता है
बहुतेरे लोग नहीं जानते
कि दुश्मन उनकी ही खोंपड़ी पर
कूच कर रहा है I
वह आवाज़ जो उन्हें हुक्म देती है
उन्हीं के दुश्मन की आवाज़ होती है
और वह आदमी जो दुश्मन के बारे में बकता है
खुद दुश्मन होता है।

(6)

युद्ध जो आ रहा है
युद्ध जो आ रहा है
पहला युद्ध नहीं है I
इससे पहले भी युद्ध हुए थे I
पिछला युद्ध जब ख़त्म हुआ
तब कुछ विजेता बने और कुछ विजित।
विजितों के बीच आम आदमी भूखों मरा
विजेताओं के बीच भी मरा वह भूखा ही।

(7)

जो शिखर पर बैठे हैं, कहते हैं

वे जो शिखर पर बैठे हैं, कहते हैं :
शांति और युद्ध के सारतत्व अलग-अलग हैं
लेकिन उनकी शान्ति और उनका युद्ध
हवा और तूफ़ान की तरह हैं
युद्ध उपजता है उनकी शान्ति से
जैसे माँ की कोख से पुत्र
माँ की डरावनी शक्ल की याद दिलाता हुआ
उनका युद्ध ख़त्म कर डालता है
जो कुछ उनकी शांति ने रख छोड़ा था।

(8)

नेता जब शान्ति की बात करते हैं

नेता जब शांति की बात करते हैं
आम आदमी जानता है
कि युद्ध सन्निकट है
नेता जब युद्ध को कोसते हैं
मोर्चे पर जाने का आदेश
हो चुका होता है I

*

जर्मनी 1945

घरों के भीतर प्लेग से मौत है
घरों के बाहर ठण्ड से मौत है
तब हमारा ठिकाना कहाँ हो ?
सुअरी ने हग डाला है अपने बिस्तर पर
सुअरी मेरी माँ है, मैंने कहा :
ओ मेरी माँ, ओ मेरी माँ,
तुमने यह क्या कर डाला मेरे साथ ?
.

(अनुवाद : मोहन थपलियाल)

कहानी

ला सियोतात का सिपाही

– बर्टोल्ट ब्रेष्ट

पहले विश्व युद्ध के बाद, दक्षिणी फ्रांस के छोटे-से बन्दरगाह वाले शहर ला सियोतात में एक जहाज़ को पानी में उतारे जाने के जश्न के दौरान, हमने चौक में एक फ्रांसीसी सिपाही की काँसे की प्रतिमा देखी जिसके इर्दगिर्द भीड़ जमा थी। हम नज़दीक गये तो देखा कि वह एक जीवित व्यक्ति था। वह धूसर रंग का ग्रेटकोट पहने था, सिर पर टिन का टोप था, और जून की गर्म धूप में वह संगीन ताने चबूतरे पर बिल्कुल स्थिर खड़ा था। उसकी एक भी पेशी हिलडुल नहीं रही थी, पलकें तक नहीं फड़क रही थीं।

उसके पैरों के पास चबूतरे से टिकाकर रखे कार्डबोर्ड के टुकड़े पर ये शब्द लिखे हुए थे:

मानव प्रतिमा

मैं, चार्ल्स लुई फ्रांशार, ...रेजिमेंट में सिपाही, वेर्दून में ज़िन्दा दफ़्न कर दिये जाने की बदौलत मुझमें मनचाहे समय तक मूर्ति की तरह अविचल रहने की असामान्य क्षमता आ गयी है। मेरे इस कौशल की अनेक प्रोफ़ेसरों ने जाँच की है और इसे एक ऐसी बीमारी बताया है जिसका कोई कारण समझ नहीं आता। कृपया एक परिवार के बेरोज़गार पिता के लिए सहायता करें।

हमने तख्ती के पास रखी तश्तरी में एक सिक्का डाल दिया और सिर हिलाते हुए वहाँ से चल दिये।

हम सोच रहे थे, तो यहाँ खड़ा है वह, सिर से पाँव तक हथियारों से लैस, इस लम्बी सहस्राब्दी का अविनाशी सैनिक, जिसके सहारे इतिहास का निर्माण हुआ, जिसके दम पर सिकन्दर, सीज़र और नेपोलियन ने वे महान कार्य किये जिनके बारे में हम स्कूली किताबों में पढ़ते हैं। ये रहा वह। एक पलक भी नहीं फड़काता। यही है साइरस का तीरन्दाज़, कैम्बाइस का कटारयुक्त पहियों वाले रथ पर सवार सैनिक जिसे रेगिस्तान की रेत भी हमेशा के लिए दफ़्न नहीं कर सकी, सीज़र का लीजनरी, चंगेज़ ख़ान का भालाधारी घुड़सवार, लुई चौदहवें का स्विस गार्ड, नेपोलियन का ग्रेनेडियर। उसके पास है वह क्षमता—जो इतनी असामान्य भी नहीं—कि उस वक़्त भी भावनाओं में न बहे जब विनाश के हर तरह के औज़ार उस पर आज़माये जाते हों। वह पत्थर की तरह अविचल रहता है (उसका कहना है), बिना कुछ महसूस किये, जब उसे भेजा जाता है मरने के लिए। हर युग के—प्रस्तर, कांस्य, लौह—भालों से छलनी किया जाता है, आर्तज़रज़ीस और सेनापति लुडेनडॉफ़ के लड़ाकू रथों के चक्कों से कुचला जाता है, हन्नीबाल के हाथियों और अटीला के घुड़सवारों के पैरों तले रौंदा जाता है, तमाम शताब्दियों की लगातार सुधर रही तोपों से उड़ती धातु से और उससे पहले विशाल गुलेलों से उड़ते पत्थरों से टुकड़े-टुकड़े हो जाता है, कबूतर के अंडों जैसी बड़ी, मधुमक्खी जैसी छोटी रायफ़ल की गोलियाँ उसे छेद डालती हैं, पर वह वैसे ही खड़ा रहता है। अलग-अलग ज़ुबानों में बार-बार नये आदेशों पर अमल करता हुआ, मगर कभी नहीं जानता कि क्यों और किसलिए। जो इलाक़े उसने जीते उन पर उसका अधिकार नहीं हुआ, वैसे ही जैसे राजमिस्त्री उस घर में नहीं रहता जो उसने बनाया है। जिस भूमि की उसने रक्षा की वह भी उसकी नहीं है। अपने हथियारों और उपकरणों का भी वह मालिक नहीं है। लेकिन वह खड़ा है विमानों से बरसती मौत और नगर के परकोटों से बरसते शोलों के नीचे, उसके पैरों तले हैं बारूदी सुरंगें और गहरी खाइयाँ, उसके चारों ओर है बीमारी और मस्टर्ड गैस, पर वह खड़ा है, भाले और तीर का जीता-जागता निशाना, तोपों का चारा, टैंक के नीचे पिसी लुगदी, गैसों को पीने वाला। उसके सामने है दुश्मन और पीछे है जनरल।

वे अनकहे हाथ जिन्होंने उसकी वर्दी तैयार की, जिरहबख्तर गढ़े, जूते सिले! वे अनकही जेबें जो उसने भरीं! दुनिया की हर भाषा में वह भीषण कोलाहल जो उसे आगे धकेलता रहा! कोई देवता नहीं जिसने उसे आशीर्वाद न दिया हो। वह, जो धैर्य के घृणित कोढ़ से पीड़ित है, हर बात से अप्रभावित रहने के असाध्य रोग ने जिसकी शक्ति हर ली है।

हमने सोचा, यह किस तरह का ज़िन्दा दफ़नाना है, जिसने उसे यह डरावना, वीभत्स, बेहद संक्रामकरोग लगा दिया है?

हमने ख़ुद से पूछा, क्या कभी इसका इलाज नहीं हो सकेगा?

अनुवाद: सत्यम

डाक पंजीयन : SSP/LW/NP-319/2017-2019
प्रेषण डाकघर : आर.एम.एस, चारबाग़, लखनऊ
प्रेषण तिथि : दिनांक 20, प्रत्येक माह

जनता के पास नौकरी नहीं और सरकार बहादुर के पास नौकरियों के आँकड़े नहीं!

– इन्द्रजीत

आज देश के नौजवानों के सामने सबसे बड़ी समस्या रोज़गार की है। इतना तो हम सभी जानते हैं कि किसी भी क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा की कोई कमी नहीं है। एक-एक नौकरी के पीछे हज़ारों-हज़ार आवेदन किये जाते हैं। पर नौकरी तो कुछ थोड़े ही लोगों को मिलती है। हर साल इन आवेदन करने वालों की संख्या बढ़ती जाती है। इस तरीक़े से बेरोज़गारी साल दर साल भयंकर रूप से बढ़ रही है। कांग्रेस के समय में बेरोज़गारी यदि दुलकी चाल से चल रही थी तो अब भाजपा के समय में सरपट दौड़ रही है।

इसके कुछ उदाहरण हैं जैसे कि रेलवे में 10 हज़ार पदों के लिए 95 लाख से ज़्यादा आवेदन भरे गये थे। इससे थोड़े दिन पहले रेलवे में ही तृतीय और चतुर्थ श्रेणी के मात्र 90 हज़ार पदों के लिए 2 करोड़ 80 लाख से भी ज़्यादा आवेदन किये गये थे। उत्तरप्रदेश में चपड़ासी के 368 पदों के लिए 23 लाख से ज़्यादा आवेदन आये थे। हाल ही में हरियाणा में चतुर्थ श्रेणी के 18,212 पदों के लिए 18 लाख से ज़्यादा आवेदन किये गये थे। आवेदन करने वालों में पीएचडी, एमटेक, एमफ़िल, बीटेक, एमबीए जैसे डिग्रीधारक भी शामिल थे। जबकि इन पदों के लिए योग्यता 5वीं या 10वीं ही है और ऐसे अनेकों उदाहरण आज हमारे सामने हैं। जो बेरोज़गारी की भयंकरता को दर्शाते हैं।

लेकिन प्रधानमन्त्री आज भी कह रहे हैं कि देश में रोज़गार की कोई कमी नहीं है, बस आँकड़ों की कमी है। आँकड़ों की इस कमी को पूरा किया 31 जनवरी को आयी नेशनल सैम्पल सर्वे ऑफ़िस (एनएसएसओ) की रिपोर्ट ने, जिसके अनुसार भारत में बेरोज़गारी की दर 6.1% हो गयी है। सेण्टर फ़ॉर मॉनिटरिंग इण्डियन इकोनॉमी (सीएमआईई) की 4 मार्च जनवरी, 2019 को आयी रिपोर्ट ने भी सरकारी दावों की पोल खोली। उक्त रिपोर्ट बताती है कि दिसम्बर 2017 से दिसम्बर 2018 सिर्फ़ एक वर्ष में 1 करोड़ 10 लाख लोगों को अपनी नौकरियों से हाथ धोना पड़ा है। सीएमआईई की मार्च 2019 की रिपोर्ट के अनुसार फ़रवरी 2019 में बेरोज़गारी की दर 7.2% हो गयी है। मोदी सरकार रोज़गार से जुड़े आँकड़ों को सार्वजनिक नहीं होने दे रही है। पहले एनएसएसओ के आँकड़े, उसके बाद केन्द्र सरकार की माइक्रो यूनिट्स डेवलपमेण्ट एण्ड रिफ़ाइनरी एजेंसी (मुद्रा) योजना के तहत कितनी नौकरियाँ पैदा की गयीं, इससे जुड़े लेबर ब्यूरो के सर्वे के आँकड़ों को सार्वजनिक नहीं होने दिया। स्थिति इतनी बुरी हो गयी है कि दुनिया भर के जाने-माने 108 अर्थशास्त्रियों और समाज वैज्ञानिकों ने प्रधानमन्त्री को चिट्ठी लिखकर केन्द्र सरकार पर आरोप लगाया है कि सरकार जानबूझकर रोज़गार के आँकड़ों को छुपा रही है और आँकड़ों के साथ छेड़छाड़ कर रही है। सच्चाई को लोगों के सामने आने से रोका जा रहा है। इससे अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर भारतीय सांख्यिकी संस्थानों की साख भी धूमिल हो रही है। ये तथ्य साबित कर रहे हैं कि सरकार जो छाती पीट-पीटकर करोड़ों रोज़गार देने का दावा कर रही है, सब झूठ है और इस झूठ की जनता में पोल ना खुल जाये इसीलिए रोज़गार से जुड़े आँकड़े सार्वजनिक नहीं कर रही है। हमारे देश में 28-29 करोड़ युवा बेरोज़गार हैं। जिनमें से 6 करोड़ डिग्रीधारक हैं। ऐसा तब है जब देश की जीडीपी बढ़ रही है यानी कि देश विकास कर रहा है! पर नौकरियाँ जनसंख्या के अनुपात में ही नहीं, संख्या के आधार पर भी साल दर साल घट रही हैं। नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में बीजेपी ने 2014 के चुनाव के समय हर साल 2 करोड़ नये रोज़गार देने का वायदा किया था। पर आँकड़े यह बताते हैं कि पिछले साढ़े चार साल के बीजेपी कार्यकाल में सिर्फ़ कुछ लाख नयी नौकरियाँ सृजित हुई हैं। जबकि नोटबन्दी और जीएसटी जैसी जनविरोधी नीतियों के कारण संगठित और असंगठित क्षेत्र में सिर्फ़ अकेले 2018 वर्ष में 1.10 करोड़ नौकरियाँ छिन गयी हैं और जिनके पास रोज़गार है भी उनमें से ज़्यादातर की तनख़्वाह इतनी कम है कि उनकी मूलभूत ज़रूरत भी पूरी नहीं हो रही है। इकोनॉमिक टाइम्स में 25 सितम्बर 2018 को छपे आर्टिकल के अनुसार भारत में 82% पुरुष और 92% महिलाओं की तनख़्वाह 10,000 रुपये से कम है। बेरोज़गारी के लगातार बढ़ने के असल कारणों पर हम बाद में आयेंगे, पहले इस व्यवस्था के पैरोकारों द्वारा फैलाये जाने वाले विभ्रमों पर बात करते हैं। पहला विभ्रम ये लोग फैलाते हैं कि संसाधनों की तुलना में जनसंख्या तेज़ गति से बढ़ रही है। इसलिए जनसंख्या बेरोज़गारी का कारण है। पर 1950-51 से 2010-11 तक के आँकड़ों का अगर हम अध्ययन करें तो हम पायेंगे की संसाधनों (खाद्य उत्पादन और औद्योगिक उत्पादन) के बढ़ने की दर जनसंख्या के बढ़ने की दर से बहुत ज़्यादा है। ख़ुद सरकारी थिंकटैंक नीति आयोग भी यह बात मानता है कि जनसंख्या की तुलना में हमारे पास संसाधनों की कोई कमी नहीं है। इसलिए यह तर्क निराधार है। दूसरा विभ्रम ये लोग फैलाते हैं कि बेरोज़गारी के लिए आरक्षण ज़िम्मेदार है। पर ख़ुद भारत सरकार के केन्द्रीय परिवहन मन्त्री नितिन गड़करी तक यह स्वीकार करते हैं कि जब नौकरियाँ ही नहीं हैं तो आरक्षण मिलने या न मिलने से क्या फ़र्क़ पड़ता है और यह एक व्यावहारिक सच्चाई है। अब हम बेरोज़गारी के बढ़ने के असल कारणों पर आते हैं। संसद में एक सवाल के जवाब में कैबिनेट राज्यमन्त्री जितेन्द्र प्रसाद ने ख़ुद माना कि कुल 4,20,547 पद तो अकेले केन्द्र में ख़ाली हैं। विभिन्न विश्वसनीय रिपोर्टों के अनुसार देशभर में स्कूल अध्यापकों के 10 लाख पद, पुलिस विभाग में 5,49,025 पद, राज्य और केन्द्रीय विश्वविद्यालयों में प्रोफ़ेसरों के 70 हज़ार पद और सरकारी अस्पतालों में डॉक्टरों के 5 लाख पद ख़ाली हैं। कुल-मिलाकर तक़रीबन 24 लाख पद ख़ाली पड़े हैं। अब सवाल ये उठता है कि सरकार इन ख़ाली पड़े पदों को क्यों नहीं भर रही है। इसका कारण सरकार पैसे की कमी बताती है। अगर ऐसा होता तो बीजेपी के कार्यकाल में 21 सरकारी बैंकों ने पूँजीपतियों के 3,16,000 करोड़ रुपये कैसे माफ़ कर दिये। इन्हीं के कार्यकाल में एनपीए 3.2 लाख करोड़ से बढ़कर 8.41 लाख करोड़ रुपये हो गया। विजय माल्या, नीरव मोदी, मेहुल चौकसी जैसे चोर हज़ारों करोड़ रुपये डकार जाने के बाद भी देश से बाहर क्यों जाने दिये? विज्ञापनों और बड़ी-बड़ी मूर्तियों को खड़ा करने के लिए हज़ारों करोड़ रुपये कहाँ से आ जाते हैं! दरअसल युवाओं को रोज़गार मुहैया न कराने के पीछे असल कारण ये हैं : पहला, अगर सरकार लोगों को रोज़गार मुहैया कराती है तो बजट का एक हिस्सा इसके लिए आवण्टित करना होगा। जिसके चलते पूँजीपतियों को दिये जाने वाले राहत पैकेज में कमी करनी पड़ेगी। दूसरा, बेरोज़गारों की भीड़ में कमी होगी, जिससे कि उनकी मोल भाव करने की ताक़त बढ़ जायेगी और मजबूरन पूँजीपतियों को न्यूनतम मज़दूरी बढ़ानी पड़ेगी। दोनों ही सूरत में पूँजीपति वर्ग की मुनाफ़े की दर गिरेगी। 2008 से पूरी दुनिया की अर्थव्यवस्थाएँ भयंकर मन्दी से गुज़र रही हैं। जिसका सीधा सा कारण उत्पादन का सार्वजनिक स्वरूप और मालिकाने का निजी स्वरूप है। उत्पादन में मन्दी छा जाती है क्योंकि पहले का ही उत्पादन बचा रहता है जिसका कारण होता है काम न होने के कारण लोगों की क्रय शक्ति का ही कम हो जाना! अर्थव्यवस्था में मन्दी का कारण यही तथाकथित अति उत्पादन है। इसलिए इस दौर में पूँजीपतियों के मुनाफ़े को सुरक्षित रखने के लिए सरकारें जनता की बुनियादी सुविधाओं जैसे शिक्षा, रोज़गार, स्वास्थ्य आदि पर होने वाले ख़र्च में लगातार कटौती कर रही हैं। जिसके कारण बेरोज़गारी, महँगाई, ग़रीबी ने लोगों का जीना मुश्किल कर दिया है। इन भयंकर समस्याओं के चलते लोगों का ग़ुस्सा इस व्यवस्था के खिलाफ़ ना फूट पड़े इसी कारण सरकारें आम जनता को धर्म, जाति और क्षेत्र के नाम पर आपस में लड़वा रही हैं। फ़र्ज़ी राष्ट्रवाद के मुद्दे को हवा दी जा रही है। लोगों के सामने एक नक़ली दुश्मन खड़ा किया रहा है।

‘बसनेगा’ नमूना सर्वेक्षण की रिपोर्ट जारी - तेज़ी से बढ़ रही है बेरोज़गारी

‘भगतसिंह राष्ट्रीय रोज़गार गारण्टी क़ानून’ अभियान, बसनेगा द्वारा आयोजित एक प्रेस वार्ता में 20 फ़रवरी को ‘बसनेगा’ की नमूना सर्वेक्षण की रिपोर्ट का प्रो. अनिल सदगोपाल, प्रो. अरुण कुमार और प्रो. सतीश देशपाण्डे द्वारा लोकार्पण किया गया। मीडिया के सामने बेरोज़गारी के असल हालात को रखा गया। बसनेगा अभियान की संयोजक शिवानी ने रोज़गार गारण्टी क़ानून व अन्य माँगों को लेकर देश-भर में चलाये जाने वाले अभियान के बारे में विस्तार से बताया। बसनेगा की इस नमूना सर्वेक्षण रिपोर्ट के मुताबिक़ बेरोज़गारी तेज़ी से बढ़ रही है। ज्ञात हो कि पिछले लगभग एक साल से रोज़गार गारण्टी व अन्य माँगों को लेकर ‘भगतसिंह राष्ट्रीय रोज़गार गारण्टी क़ानून’ अभियान, बसनेगा नौजवान भारत सभा, बिगुल मज़दूर दस्ता, दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन के संयुक्त नेतृत्व में चलाया जा रहा है। ‘बसनेगा’ द्वारा यह सर्वेक्षण दिल्ली, हरियाणा, महाराष्ट्र और बिहार की मज़दूर बस्तियों और कॉलोनियों में किया गया है। प्रसिद्ध शिक्षाविद और सामाजिक कार्यकर्ता प्रो. अनिल सदगोपाल ने प्रेस वार्ता में कहा कि बसनेगा के तहत उठायी जा रही राष्ट्रीय रोज़गार गारण्टी क़ानून की माँग आज देश के नौजवानों की सबसे ज़रूरी माँग है। प्रो. सतीश देशपाण्डे, समाजशास्त्र विभाग, दिल्ली स्कूल ऑफ़ इकोनॉमिक्स, प्रो. अरुण कुमार, अर्थशास्त्री और वर्तमान में इण्डियन इंस्टीटयूट ऑफ़ साइन्स में मैलकोम अधिशेषिया चेयर प्रोफ़ेसर ने बसनेगा द्वारा किये गये सर्वे को बेहद सराहनीय बताया। इससे पहले भी आये कई सर्वे से साबित हुआ कि देश में पिछले कुछ सालों में बेरोज़गारी बढ़ी है। अनिल सदगोपाल ने कहा कि देश के युवाओं को शिक्षा और रोज़गार जैसे ज़रूरी मुद्दों पर सरकारों को अवश्य घेरना चाहिए।

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधी पुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक: सुखविन्दर, अभिनव ● सम्पाकीय पता: 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006